'हिन्दी-पुस्तक माला' संख्या २०



अजातशत्रु

(नाटक)



लेखक—

श्रीयुत बाबू जयशङ्कर 'प्रसाद'।



प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-भण्डार कार्यालय,

बनारस सिटी।



वि० १९७९

प्रथम बार] [मूल्य १



प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-भण्डार कार्यालय,
बनारस सिटी।

उपहार ।

भवदीय—

श्री

'हिन्दी-पुस्तक-माला'

का

२१ वां अंक

प्रसिद्ध गल्प-लेखक श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव लिखित

निकुञ्ज

अर्थात्, छोटे बड़े सब के पढ़ने योग्य १२ उच्चकोटि की

मौलिक, मनोरञ्जक कहानियों का गुच्छा

शीघ्र ही प्रकाशित होगा ।

साहित्य गगन के और जिन जिन उज्वल नक्षत्रों की
महत्वमयी रचनायें

'हिन्दी-पुस्तक-माला' में

प्रकाशित होंगी-

श्रीयुत पं० कृष्णबिहारी मिश्र, बी० ए०, एल० एल० बी०।
,, बा० रामनाथ सेठ, एम० ए०, एल० एल० बी०।
,, बा० पदुमलालपुन्नालालबख्शी,बी०ए०,सम्पादक'सरस्वती'।
,, बा० रामचन्द्र वर्मा ।
,, पं० लोचनप्रसाद जी पाण्डेय।
,, पं० चन्द्रमनोहरमिश्र, बी० ए०, एल० एल० बी०।
,, ठा० शिवनन्दनसिंह, बी० ए०।
,, कुमार गङ्गानन्दसिंह, एम० ए०।
,, ठा० कल्याणसिंह शेखावत, बी० ए०।
,, बा० निर्मलकान्त, बी० ए०।
,, बा० प्यारेलाल गुप्त।
,, बा० शिवदास गुप्त 'कुसुम' (सम्पादक 'युगान्तर')
,, बा० शिवप्रसादप्रसाद सिंह, बी० ए०, बी० एस० सी०
,, बा० चण्डीप्रसाद, बी० ए०, 'हृदयेश'।
,, प० मुकुटधर पाण्डेय।
,, बा० जगबहादुरसिंह 'प्रेमी'।
,, बा० प्रतापनारायण श्रीवास्तव।
,, पं० सूर्य्यप्रसाद चतुर्वेदी, बी० ए०।
,, प० रामकृष्ण शुक्ल, बी० ए०।
,, कुमर सुखवक्स राय।
,, श्री० गोविन्द पन्त।
,, पं० रुद्रदत्त भट्ट।
,, प० मनोहरप्रसाद मिश्र।
,, प० जगदीश झा 'विमल'।



प्राक्कथन

'अजातशत्रु' के लेखक—जिनसे हिन्दी पाठक खूब अच्छी तरह परिचित हैं—हिन्दी के उन इने गिने लेखकों में से हैं जिन्होंने मातृ भाषा में मौलिकता का आरम्भ किया है। उनकी कृतियाँ मौलिक हैं यही नहीं, वे महत्त्वपूर्ण भी हैं।

यों तो उनकी रचना और शैली में सभी जगह उत्कृष्टता है। पर उनके नाटक तो हिन्दी-संसार में एक दम नई चीज़ हैं। वे आज की नहीं, आगामी कल की चीज़ हैं। वे हिन्दी-साहित्य में एक नए युग के विधायक हैं। न विचारों के ख़याल से, न कथानक के ख़याल से, न लक्ष्य के ख़याल से आज तक हिन्दी में इस प्रकार की रचना हुई है न अभी होती ही दीख पड़ती है।

हाँ, वह समय दूर नहीं है जब 'विशाख' और 'अजातशत्रु' के आदर्श पर हिन्दी में धड़ाधड़ नाटक निकलने लगेंगे। परन्तु वे अनुकरण मात्र होंगे। 'प्रसाद' जी की कृतियों के निरालेपन पर उनका कोई असर न पड़ेगा।

सम्भव है कि हमारा कथन बहुतों को व्याजस्तुति मात्र जान पड़े, पर समय इन पंक्तियों की सत्यता साबित करेगा। अस्तु, हम प्रकृत विषय से अलग हुए जा रहे हैं—

बंग-साहित्य-प्रेमियों के एक दल द्वारा अत्यन्त समादृत नाट्यकार द्विजेन्द्रबाबू का कथन है—"जिस नाटक में अन्तर्द्वन्द्व दिखाया जाय वही नाटक उच्च श्रेणी का होता है—अन्तर्विरोध के रहे बिना उच्चश्रेणी का नाटक बन ही नहीं सकता।" यह सिद्धान्त किसी अंश में ठीक है, क्योंकि ऐसा होने से काव्य में प्रशंसित लोकोत्तर चमत्कार बढ़ता है। किन्तु, यही सिद्धान्त चरम है, ऐसा मानना कठिन है, क्योंकि अन्तर्विरोध से बाह्यद्वन्द्व, जगत्, का उद्भव है और इस बाह्यद्वन्द्व का काल-क्रम से शीघ्र अवसान होता है—इसी का चित्रण कवि के अभीष्ट को शीघ्र समीप ले आता है।

अन्तर्द्वन्द्व मय अपूर्णता में घटना का अन्त कर देना, उसे कल्पना का क्षेत्र बना देना, छोटी छोटी घटनाओं पर अवलम्बित आख्यायिकाओं का काम है। यदि नाटक अपने ऊपर यह भार उठावें तो उनसे कृषियों को केवल चञ्चलता की शिक्षा मिलेगी,

और सन्देह-भाव की पुष्टि होगी। और, चरित्र-गठन को उपकरण देने से, तथा मानव-समाज के ज्ञान-साधन में सहायक होने से—जो नाटक का उद्देश नहीं, तो निर्देश अवश्य है—वे अन्ततः वंचित ही रहेंगे।

ब्रह्माण्ड का—जगत् का—हमारे जीवन से विशेष सान्निध्य है। इसी महानाटक से हम अपने चरित्र के लिए उपकरण ग्रहण करते हैं, आदर्श बनाते हैं, अनुकरण करते हैं। अत: जो चरित्र मानवता की *साधारण गति के समीप होगा वही उसे विशेष शिक्षा* देगा। साथही विशेष विनोद की सामग्री जुटावेगा। जो दूर है वह केवल कौतुक और आश्चर्य ही का उद्दीपन करेगा। वह, प्रबल प्रतिघात तथा वृत्तियों को विपरीत धक्के खिलाकर उत्तेजित करके अथवा, बलवती वासनाओं को दुर्दान्त मानवरूप में अति चित्रण करके समाज में कुतूहल उपजावेगा। उसकी चपलता बढ़ावेगा और उसमें भ्रान्ति करा देगा। ऐसे ही नाटक चाहे वे रचना में प्रसादान्त क्यों न हों, मानवता के लिए, परिणाम में विषादान्त होते हैं।

किन्तु जहाँ वासनाओं का चरित्र के साथ उत्थान और पतन तथा संघर्ष होगा, साथ ही उत्कट वासनाओं का आरम्भ होकर शान्त हृदय में अवसान होगा, वह नाटक मरणान्त भले ही हो *किन्तु है मानवता के लिए प्रसादान्त। 'प्रसाद' जी के नाटकों में एक* यह भी मुख्य विशेषता है।

'अजातशत्रु' का अन्तिम दृश्य इसका प्रस्तुत प्रमाण है। यद्यपि ग्रन्थ में बिम्बसार का लड़खड़ाना यवनिकापतन के साथ उसके मरण का द्योतक है। किन्तु, जिन वाक्यों को कहता हुआ वह लड़खड़ाता है वह वाक्य तथा उसी क्षण भगवान् गौतम का प्रवेश, बिम्बसार के हृदय की, तथा उस अवसर की पूर्ण शान्ति का सूचक है।

हाँ, 'प्रसाद' जी के नाटक ऐसे ही हैं। वे न तो केवल अन्तर्द्वंद्व को लेकर मर्त्यलोक में, चतुर्मुख की मानसी सृष्टि की तरह चमत्कार पूर्ण किन्तु निःसार और निरवलम्ब जगत् की अवतारणा करते हैं। न केवल बाह्यद्वन्द्व दिखा कर मानवता के सामने पाशव आदर्श रखते हैं। वरन, वे इन दोनों अंगों के समुचित सम्मिश्रण होने के कारण मानवता के चरम आदर्श के पूर्ण व्यंजक हैं। अतएव मानवता की ये एक बड़ी भारी पूँजी हैं।

'प्रसाद' के आदर्श पात्रों में पवित्रता, उच्चता, भव्यता आदि देव गुण इस लिए हैं कि वे पूर्ण मनुष्य हैं। उनका बिम्बसार, मगधाधिप होने के कारण बड़ा नहीं। उसकी बड़ाई इस लिए है कि वह, नीचे लिखे, तथा इसी प्रकार के अन्य वाक्य द्वारा उन संकीर्ण सामाजिक नियमों को, जिन्होंने मनुष्य को ऊँच नीच के भिन्न भिन्न प्रकार के बंधनों में जकड़ कर मानवता की पवित्रता को पददलित कर रक्खा है, किस ज़ोरों में खण्डन किया है—

"यदि मैं सम्राट् न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलय के झुरमुट में एक अधखिला फूल होता और संसार की

दृष्टि मुझपर न पड़ती—पवन के किसी लहर को सुरभित कर के धीरे से उस याले में घू पड़ता—तो इतना भीषण चीत्कार इस विश्व में न मचता ।"

"चुप । यदि मेरा नाम न जानते हो तो "मनुष्य" कह कर पुकारो । यह भयानक सम्बोधन (सम्राट्) मुझे न चाहिये ।"

इतना ही नहीं, उसके जीवन भर में मानवता ओतप्रोत है, और उसका पुत्र क्रूर अजातशत्रु भी अन्त को इसके आगे सिर नवाता है।

इसी तरह 'प्रसाद' के लोकोत्तर-चरित्र पात्रों को भी हम इसी लिए श्रद्धापूर्वक सिर नवाते हैं कि उनमें मानवता का पूर्ण विकास है। उनके बुद्ध इसलिए बुद्ध हैं-इसलिए अवतार हैं—कि वे मानवता के आदर्शों की पूर्ण मूर्त्ति हैं। यह नहीं कि, वे अवतार हैं, अतः उनमें इन आदर्शों की पूर्णता उपस्थित हुई है।

कवि की इस प्रतिभा पर बहुत कुछ कहा जा सकता है लेकिन हम यही चाहते हैं कि 'अजातशत्रु' पढ़ कर पाठक हमारी समीक्षा की जाँच करें।

हाँ, इस नोट के समाप्त करने के पहिले एक बात और कहनी है—

भारतवर्ष की किसी भी भाषा में लिखे जाने वाले नाटकों में, उनके लेखक घटनाकाल के रहन सहन, चाल व्यवहार की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। उनके पात्रों के नाम भर तो ऐतिहा

सिक रहते हैं लेकिन अपने आचार व्यवहार से वे वर्तमान काल के मनुष्य—सो भी स्वदेश के नहीं परिश्चम के—ज्ञात पड़ते हैं।

किन्तु, 'प्रसाद' जी इस दोष से प्राय बिलकुल बचे हैं। अभी तक हमारे पूर्वजों के सामाजिक जीवन की बहुत ही थोड़ी खोज हुई है। जो कुछ हुई है 'प्रसाद' जी अपने नाटकों में उसका पूर्ण उपयोग करने के भागी हैं।

काशी
२०-११-२२

कृष्णदास

कथा-प्रसंग



इतिहास में घटनाओं की प्राय: पुनरावृत्ति होते देखी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें कोई नई घटना होती ही नहीं। किन्तु असाधारण नई घटना भी भविष्यत् में फिर होने की आशा रखती है। मानव-समाज की कल्पना का भंडार अक्षय है, क्योंकि वह इच्छाशक्ति का विकास है। इन कल्पनाओं या इच्छाओं का मूलसूत्र बहुत ही सूक्ष्म और अपरिस्फुट होता है। जब वह इच्छाशक्ति किसी व्यक्ति या जाति में केंद्रीभूत होकर अपना सफल या विकसित रूप धारण करती है तभी इतिहास की सृष्टि होती है। विश्व में जब तक कल्पना इयत्ता को नहीं प्राप्त होती तब तक वह रूप परिवर्तन करती हुई पुनरावृत्ति करती ही जाती है। राजनीतिज्ञ लोग पूर्व घटना के उसी घुमाव-फिराव से बचने के लिये इतिहास का अनुशीलन करते हैं, और प्राचीन कल्पना को निर्दोष तथा सम्पूर्ण बनाने के लिये भूतपूर्व विघ्न स्वरूप कारणों का बहिष्कार करते हैं। किन्तु समाज की अभिलाषा अनन्त स्रोतवाली है। पूर्व कल्पना के पूर्ण होते होते एक नई कल्पना उसका विरोध करने लगती है, और पूर्वकल्पना कुछ काल तक ठहरकर, फिर होने के लिये अपना क्षेत्र प्रस्तुत करती है। इधर इतिहास का नवीन अध्याय खुलने लगता है। मानव-समाज के इतिहास का इसी प्रकार संकलन होता है।



गौतम बुद्ध से आरम्भ होता है, क्योंकि उसी काल की बौद्ध कथाओं में वर्णित व्यक्तियों का पुराणों की वंशावली में भी प्रसंग आता है। इसलिये विद्वान् लोग यहीं से प्रामाणिक इतिहास मानते हैं। पौराणिक काल के बाद गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व ने तत्कालीन सभ्य संसार में बड़ा भारी परिवर्तन किया। इसलिये हम कहेंगे कि भारत के ऐतिहासिक काल का प्रारंभ धन्य है, जिसने संसार में पशु कीट पतंग से लेकर इन्द्र तक के साम्य-वाद की शख्य-ध्वनि की थी। केवल इसी कारण, हमें, अपना अतीव प्राचीन इतिहास रखने पर भी, यहीं से इतिहास-काल का प्रारंभ मानने में गर्व होना चाहिए।

भारत युद्ध के पौराणिक काल के बाद इंद्रप्रस्थ के कौरवों की प्रभुता कम होने पर, बहुत दिनों तक कोई सम्राट् नहीं हुआ। भिन्न भिन्न जातियाँ अपने अपने देशों में शासन करती थीं। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथों में ऐसे १६ राष्ट्रों का उल्लेख है, प्रायः उनका वर्णन भौगोलिक क्रम के अनुसार न होकर जातित्व पर निर्भर है। उनके ये नाम हैं—अङ्ग, मगध, काशी, कोशल, वृजि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वक, अवंतिक, गांधार और कांबोज।

इनका वर्णन केवल बौद्धों की धार्मिक दृष्टि से हुआ है। उस काल में जिन लोगों से बौद्धों का सम्बन्ध हुआ है, इनमें उन्हीं का नाम है। जातक-कथाओं में शिवि, सौवीर, मद्र, विराट् और उद्यान का भी नाम आया है। किंतु उनकी प्रधानता नहीं है। उस समय जिन छोटी से छोटी जातियों, गणों और राष्ट्रों का संबंध बौद्ध धर्म से हुआ, उन्हें प्रधानता दी गई, जैसे 'मल्ल' आदि।

अपनी अपनी स्वतन्त्र कुलीनता और आचार रखनेवाले इन राष्ट्रों में—जिनमें से कई में गण तन्त्र शासन प्रणाली भी प्रचलित थी—निसर्ग नियमानुसार एकता का परिवर्तन (जिसका होना अनिवार्य था), राजनीति के कारण नहीं, किन्तु एक—

धार्मिक क्रांति से,

होनेवाला था। वैदिक हिंसा-पूर्ण यज्ञों और पुरोहितों के एकाधिपत्य से साधारण जनता के हृदय क्षेत्र में विद्रोह की उत्पत्ति हो रही थी। उसी के फल-स्वरूप जैन और बौद्ध धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। परम अहिंसा-वादी जैन-धर्म के बाद बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। वह हिंसा-मय वेद-वाद और पूर्ण अहिंसावाली जैन-धाराओं के 'अति वाद' से बचता हुआ एक मध्यवर्ती नया मार्ग था। सम्भवतः धर्म चक्र प्रवर्तन के समय गौतम ने इसी से अपने धर्म को 'मध्यमा प्रतिपदा' के नाम से अभिहित किया। इसी धार्मिक क्रांति ने भारत के भिन्न भिन्न राष्ट्रों को परस्पर सन्धि—विग्रह करने के लिये बाध्य किया।

इन्द्रप्रस्थ और अयोध्या के प्रभाव का ह्रास होने पर इस धर्म के कारण, पाटलि-पुत्र पीछे बहुत दिनों तक भारत की राजधानी बना रहा। उस समय के बौद्ध-ग्रन्थों में ऊपर कहे हुए बहुत से राष्ट्रों में से चार प्रमुख राष्ट्रों का बहुत वर्णन है—कोशल, मगध, अवन्ती और वत्स। काशी का पुराना राष्ट्र सम्भवतः उस काल के सब राष्ट्रों से विशेष मर्यादा रखता था, किन्तु वह जर्जर हो रहा था। महाराज प्रसेनजित् का वहाँ राज्य था। अवन्ती में प्रद्योत (पज्जोत) का राज्य था। मालव का राष्ट्र भी उस समय सबल था। मगध, जिसने मौर्यों के बाद भारत में महान् साम्राज्य स्थापित किया, शक्तिशाली हो रहा था। बिम्बसार वहाँ के राजा थे।

अजातशत्रु,

वैशाली [मुजि] की राजकुमारी से उत्पन्न, उन्हीं का पुत्र था। इसका वर्णन भी बौद्धों की प्राचीन कथाओं में बहुत मिलता है। बिंबसार की बड़ी रानी कोशला कोशल-नरेश प्रसेनजित् की बहन थी। वत्स-राष्ट्र की राजधानी कौशांबी थी, जिसका खँडहर ज़िला बाँदा [करई-सब-डिवीज़न] में यमुना के किनारे 'कोसम' नाम से प्रसिद्ध है।

उदयन,

इसी कौशांबी का राजा था। इसने मगधराज और अवन्ती-नरेश, दोनों की कन्याओं से विवाह किया था। भारत के सहस्ररजनी-चरित्र "कथा-सरित्सागर" का नायक इसी का पुत्र नरवाहनदत्त है।

बृहत्कथा [कथा-सरित्सागर] के आदि आचार्य वररुचि हैं जो कौशांबी में उत्पन्न हुए थे, और जिन्होंने मगध में नन्द का मंत्रित्व किया। उदयन के समकालीन अजातशत्रु के बाद उदयाश्व, नन्दिवर्द्धन और महानन्द नाम के तीन राजा मगध के सिंहासन पर बैठे। शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न, महानन्द के पुत्र, महापद्म-नामक नंद ने नन्द-वंश की नींव डाली। इसके बाद सुमाल्य आदि ८ नंदों ने शासन किया [विष्णु पुराण, ४ अंश]। किसी के मत से महापद्म के बाद केवल नव नन्दों ने राज्य किया। इसी 'नव नन्द' वाक्य के दो अर्थ हुए—नव नन्द [नवीन नन्द] तथा महापद्म और सुमाल्य आदि ९ नन्द। इनका राज्य-काल, विष्णु पुराण के अनुसार, १०० वर्ष है। नन्द के पहिले राजों का राज्य काल भी, पुराणों के अनुसार, लगभग १०० वर्ष होता है। ढुंढि ने मुद्राराक्षस के उपोद्घात में अन्तिम नन्द का नाम धननन्द लिखा है। कथा-सरित्सागर में उसका नाम योगनन्द है। इसके बाद योगानन्द

का मन्त्री वररुचि हुआ । यदि ऊपर लिखी हुई पुराणों की गणना सही है, तो कहना होगा कि उदयन के पीछे २०० वर्ष के बाद, वररुचि हुए । क्योंकि पुराणों के अनुसार ४ शिशुनाग-वंश के और नवनन्द-वंश के राजों का राज्य-काल इतना ही होता है । महावंश और जैनों के अनुसार कालाशोक के बाद केवल नवनन्द का नाम आता है । कालाशोक पुराण का महापद्म नन्द है । बौद्धों के लेखानुसार इन शिशुनाग तथा नन्दों का सम्पूर्ण राज्य काल १०० वर्ष से कुछ ही अधिक होता है । यदि इसे माना जाय, तो उदयन के १००–१७५ वर्ष पीछे वररुचि का होना प्रमाणित होगा । कथा-सरित्सागर में इसी का नाम 'कात्यायन' भी है—"नाम्ना वररुचि' किंच कात्यायन इति श्रुत ।" इन विवरणों से प्रतीत होता है कि वररुचि उदयन के १२५–२०० वर्ष बाद हुए । विख्यात उदयन की कौशाम्बी वररुचि की जन्म भूमि है ।

मूल-बृहत्कथा इसी वररुचि ने काणभूति से कही, और काणभूति ने गुणाढ्य से । इससे व्यक्त होता है कि यह कथा वररुचि के मस्तिष्क का आविष्कार है, जो सम्भवत उसने संक्षिप्त रूप से संस्कृत में कही थी । क्योंकि उदयन की कथा उनकी जन्मभूमि में किम्वदन्तियों के रूप में प्रचलित रही होगी । उसी मूल उपाख्यान को क्रमशः काणभूति और गुणाढ्य ने प्राकृत और पैशाची भाषाओं में विस्तार पूर्वक लिखा । महाकवि क्षेमेंद्र ने उसे बृहत्कथा-मंजरी नाम से, संक्षिप्त रूप से, संस्कृत में लिखा । फिर काश्मीर-राज अनन्तदेव के राज्य-काल में कथा सरित्सागर की रचना की । इस उपाख्यान को भारतीयों ने बहुत आदर दिया । क्योंकि वत्सराज उदयन कई नाटकों और उपाख्यानों में नायक बनाए गए हैं । स्वप्न-वासवदत्ता प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण और रत्नावली में इन्हीं का वर्णन है । हर्षचरित में लिखा है—"नागवन-

विहारशीतो च मायामत्तगजान्निर्गता—महासेनसैनिका वत्सपतिं न्ययंसिषुः।" मेघदूत में भी—"प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रा-मवृद्धान्" और "प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे" इत्यादि है। इसी से इस कथा की सर्वलोकप्रियता समझी जा सकती है। वररुचि ने इस उपाख्यान माला को सम्भवतः ३५० ई० पू० लिखा होगा। फिर सातवाहन नामक आन्ध्र-नरपति के राज पंडित गुणाढ्य ने इसे बृहत्कथा नाम से, ईसा की पहिली शताब्दी में, लिखा। इस कथा का नायक नरवाहनदत्त इसी उदयन का पुत्र था।

बौद्धों के यहाँ इसके पिता का नाम 'परंतप' मिलता है। और, 'भरत परिदीपित उदेनिवस्तु' के नाम से एक आख्यायिका है। उसमें भी—जैसा कि कथासरित्सागर में—इसकी माता का गरुड़-वंश के पक्षी द्वारा उदय-गिरि की गुफा में ले आया जाना और वहाँ एक मुनि कुमार का उसकी रक्षा और सेवा करना लिखा है। बहुत दिनों तक इसी प्रकार साथ रहते-रहते मुनि से उसका स्नेह हो गया, और उसी से वह गर्भवती हुई। उदय गिरि (कलिंग?) की गुफा में जन्म होने के कारण लड़के का नाम उदयन पड़ा। मुनि ने उसे हस्ती वश करने की विद्या और और भी कई सिद्धियाँ दीं। एक वीणा भी मिली (कथा-सरित्सागर के अनुसार वह, प्राण बचाने पर, नागराज ने दी थी)। वीणा द्वारा हाथियों और शबरों की बहुत सी सेना एकत्र करके उसने कौशांबी को हस्तगत किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। किंतु बृहत्कथा के आदि आचार्य वररुचि का कौशाम्बी में जन्म होने के कारण, उदयन की ओर विशेष पक्षपात सा दिखाई देता है। अपने आख्यान के नायक को कुलीन बनाने के लिये उसने उदयन को पाण्डव वंश का लिखा है। उसके अनुसार उदयन गाण्डीवधारी अर्जुन की सातवीं

पीढ़ी में शतानीक सहस्रानीक का पुत्र था। बौद्धों के मतानुसार 'परंतप' के क्षेत्रज पुत्र उदयन की कुलीनता नहीं प्रकट होती। परन्तु वररुचि ने लिखा है कि हस्तिनापुर नष्ट होने पर पाण्डव-वंशियों ने कौशांबी को राजधानी बनाया। वररुचि ने यों सहस्रानीक से कौशाम्बी के राज वंश का आरम्भ माना है। कहा जाता है, इसी उदयन ने अवन्तिका को जीतकर उसका नाम उदयन-पुरी या उज्जयन पुरी रक्खा। कथा-सरित्सागर में उदयन के बाद नरवाहनदत्त का ही वर्णन मिलता है। विदित होता है एक-दो पीढ़ी चलकर उदयन का वंश मगध की साम्राज्य लिप्सा और उसकी रण नीति में अपने स्वतंत्र अस्तित्व को नहीं रख सका।

किन्तु विष्णु-पुराण की एक प्राचीन प्रति में कुछ नया शोध मिला है और उसमें कुछ और नई बातों का पता चलता है। विष्णु-पुराण के चतुर्थ अंश के २१ वें अध्याय में लिखा है कि "तस्यापि जनमेजयश्रुतसेनोग्रसेनभीमसेना पुत्राश्चत्वारो भविष्यति ।१। तस्यापरः शतानीको भविष्यति योऽसौ ' विषयविरक्त चित्तो " निर्वाणमाप्स्यति ।२। शतानीकादश्वमेधदत्तो भविता। तस्मादप्यधिसीमकृष्णः अधिसीमकृष्णात् निचक्नुः यो गंगयापहृते हस्तिनापुरे कौशाम्ब्यां निवत्स्यति ।"

इसके बाद १७ राजों के नाम हैं। फिर "ततोप्यपरः शतानीकः तस्माच्च उदयनः उदयनादहीनरः" लिखा है।

इससे दो बातें व्यक्त होती हैं। पहिली यह कि शतानीक कौशाम्बी में नहीं गए, किन्तु निचक्नु-नामक पाण्डव वंशी राजा हस्तिनापुर के गंगा में बह जाने पर कौशांबी गए। उनसे २९ वीं पीढ़ी में उदयन हुए। सम्भवतः उनके पुत्र अहीनर का ही नाम कथा-सरित्सागर में नरवाहनदत्त लिखा है।

दूसरी यह कि शतानीक इस अध्याय में दोनों स्थान पर "अपर-शतानीक" करके लिखा गया है। "अपरशतानीक" का विषय-विरागी होना, विरक्त हो जाना, लिखा है। सम्भवतः यह शतानीक उदयन के पहिले का, कौशाम्बी का, राजा है। अथवा बौद्धों की कथा के अनुसार इसी की रानी का क्षेत्रज पुत्र उदयन है, किन्तु यहाँ नाम—इस राजा का—परतप है। जनमेजय के बाद जो "अपरशतानीक" आता है वह भ्रम सा प्रतीत होता है, क्योंकि जनमेजय ने अश्वमेध-यज्ञ किया था, इसलिये जनमेजय के पुत्र का नाम अश्वमेधदत्त होना कुछ सगत प्रतीत होता है। अतएव कौशाम्बी में इस दूसरे शतानीक की ही वास्तविक स्थिति ज्ञात होती है, जिसकी स्त्री किसी प्रकार [गरुडपक्षी द्वारा] हरी गई। इस राजा शतानीक के विरागी हो जाने पर उदय-गिरि की गुफा में उत्पन्न विजयी वीर उदयन अपने बाहु बल से कौशाम्बी का अधिकारी हो गया। इसके बाद कौशाम्बी के सिंहासन पर क्रमश अहीनर [नर-वाहनदत्त], खडपाणि, नरमित्र और क्षेमक ये चार राजे बैठे। इसके बाद कौशाम्बी के राज-वश या पाडव-वश का अवसान होता है।

अर्जुन से सातवीं पीढ़ी में उदयन का होना तो किसी प्रकार से ठीक नहीं माना जा सकता, क्योंकि अर्जुन के समकालीन जरासघ के पुत्र सहदेव से लेकर, शिशुनाग वश से पहिले के जरासघ-वश के २२ राजे मगध के सिंहासन पर बैठ चुके हैं। उनके बाद १२ शिशुनाग-वश के बैठे, जिनमें छठे और सातवें राजों के समकालीन उदयन थे। तो क्या एक वश में, उतने ही समय में, तीस पीढ़ियाँ हो गईं, जितने में कि दूसरे देश में केवल सात ही पीढ़ियाँ हुईं? यह बात कदापि मानने योग्य न होगी। सम्भवत इसी विषमता को देखकर श्रीगणपति शास्त्री ने "अभि

मन्यो पंचविंश संतानः " इत्यादि लिखा है। सम्भव है विद्वानों की खोज आगे चलकर किसी दूसरी बात की सूचना दे, क्योंकि कौशाम्बी में न तो अभी विशेष खोज ही हुई है और न विशेष शिलालेख इत्यादि ही मिले हैं। इसलिये सम्भव है कौशांबी के राजवंश का रहस्य अभी पृथ्वी के गर्भ में ही दबा पड़ा हो।

कथा-सरित्सागर में उदयन की दो रानियों का नाम मिला है, किन्तु बौद्धों के प्राचीन ग्रथों में उसकी तीसरी रानी मागधी का नाम भी आया है।

वासवदत्ता और पद्मावती,

इनमें से वासवदत्ता उसकी बड़ी रानी थी, जो अवंती के चंड महासेन की कन्या थी। सम्भवतः इसी चंड का नाम प्रद्योत भी था, क्योंकि मेघदूत में "प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोत्र जह्रे" और किसी प्रति में "चंडस्यात्र प्रियदुहितरं वत्सराजो विजह्रे" ये दोनों पाठ मिलते हैं। इधर बौद्धों के लेखों में अवंती के राजा का नाम प्रद्योत मिलता है, और कथा सरित्सागर के एक श्लोक से एक भ्रम और भी उत्पन्न होता है। वह यह है— "ततश्चंडमहासेनप्रद्योतौ पितरौ द्वयोः देव्योः।" तो क्या प्रद्योत पद्मावती के पिता का नाम था? किन्तु विद्वान लोग प्रद्योत और चंड-महासेन को एक ही मानते हैं। यही मत ठीक है, क्योंकि भास ने भी अवंती के राजा का नाम प्रद्योत ही लिखा है, और वासवदत्ता में उन्होंने यह दिखाया है कि मगध राजकुमारी पद्मावती को वह अपने लिये चाहता था। जैकोबी ने अपने वासवदत्ता के अनुवाद में अनुमान किया है कि यह प्रद्योत सम्भवतः चंड-महासेन का पुत्र था, किन्तु जैसा कि प्राचीन राजों का देखा आता है, यह अवश्य अवंती के राजा का मुख्य नाम था। उसका

राज्य-नाम चण्ड-महासेन था। बौद्धों के लेख से प्रसेनजित् का एक दूसरे नाम 'अग्निदत्त' का भी पता लगता है। बिंबसार श्रेणिक के और अजातशत्रु कुणीक के नाम से भी विख्यात हैं।

पद्मावती, उदयन की दूसरी रानी, के पिता के नाम में बड़ा मतभेद है। यह तो निर्विवाद है कि वह मगधराज की कन्या थी, क्योंकि कथा-सरित्सागर में भी यही लिखा है। किन्तु बौद्धों ने उसका नाम श्यामावती लिखा है जिस पर, मागधी के द्वारा उत्तेजित किये जाने पर, उदयन बहुत नाराज़ हो गए थे। वह श्यामावती के ऊपर, बौद्ध-धर्म का उपदेश सुनने के कारण, बहुत क्रुद्ध हुए। यहाँ तक कि उसे जला डालने का भी उपक्रम हुआ था। किन्तु भास की वासवदत्ता में इस रानी के भाई का नाम दर्शक लिखा है। पुराणों में भी अजातशत्रु के बाद दर्शक, हर्षक, दर्भक और वंशक इन कई नामों से अभिहित एक राजा का उल्लेख है। किन्तु महावंश आदि बौद्ध ग्रंथों में केवल अजात के पुत्र उदयाश्व का ही नाम उदायिभद्र, उदयभद्रक के रूपांतर में, मिलता है। हमारा अनुमान है कि पद्मावती अजातशत्रु की बहन थी, और भास ने संभवतः (कुणीक के स्थान में) अजात के दूसरे नाम का ही उल्लेख किया है जैसा कि उसने चण्ड-महासेन के लिये प्रद्योत नाम का प्रयोग किया है।

यदि पद्मावती अजातशत्रु की कन्या हुई, तो इन बातों को भी विचारना होगा कि जिससमय बिंबसार मगध में, अपनी वृद्धावस्था में, राज्य कर रहा था उससमय पद्मावती का विवाह हो चुका था। क्योंकि प्रसेनजित उसकी हमजोली का था। यह बिंबसार का साला था। कलिंगदत्त ने प्रसेनजित् को अपनी कन्या देनी चाही थी, किन्तु स्वयं उसकी कन्या कलिंगसेना ने प्रसेन को वृद्ध देखकर उदयन से विवाह करने का निश्चय किया था।

"श्रावस्तीं प्राप्य पूर्वं च त प्रसेनजित नृपम्।
मृगयानिगत दूराज्जरापांडु-न्ददर्श सा॥
× × ×
तमुद्यानगता सा ते वत्सेश सख्युदीरितम्। इत्यादि
(मदनमञ्जुका लम्बक)

अर्थात् पहिले श्रावस्ती में पहुँचकर, उद्यान में ठहर कर, उसने सखी के बताए हुए वत्सराज प्रसेनजित् का शिकार के लिये जाते समय, दूर से देखा। वह वृद्धावस्था के कारण पांडु वर्ण हो रहे थे।

इधर बौद्धों ने लिखा है कि "गौतम ने अपना नवाँ चातुर्मास्य कौशांबी में, उदयन के राज्य काल में, व्यतीत किया, और ४५ चातुर्मास्य करके उनका निर्वाण हुआ।" ऐसा भी कहा जाता है कि—

अजातशत्रु के राज्याभिषेक के

नवें या आठवें वर्ष में गोतम का निर्वाण हुआ। इससे प्रतीत होता है कि गौतम के ३५ वें या ३६ वें चातुर्मास्य के समय अजातशत्रु सिंहासन पर बैठा। तब तक वह बिंबसार का प्रतिनिधि या युवराज-मात्र था। क्योंकि अजात ने अपने पिता को अलग करके, प्रतिनिधि रूप से, बहुत दिनों तक राज्यकार्य किया था, और इसी कारण गौतम ने राजगृह का आना बन्द कर दिया था। ३५ वें चातुर्मास्य में ९ चातुर्मास्यों का समय घटा देने से निश्चय होता है कि अजात के सिंहासन पर बैठने के २६ वर्ष पहिले उदयन ने पद्मावती और वासवदत्ता से विवाह कर लिया था, और वह एक स्वतंत्र शक्तिशाली नरेश था। इन बातों को देखने से यही ठीक जँचता है कि पद्मावती अजातशत्रु की ही बड़ी बहन थी, क्योंकि पद्मावती को अजातशत्रु से बड़ी मानने के लिये यह विवरण यथेष्ट है। दर्शक का उल्लेख पुराणों में मिलता है,

और भास ने भी अपने नाटक में यही नाम लिया है। किन्तु समय का व्यवधान देखने से—और बौद्धों के यहाँ उसका नाम न मिलने के कारण—यही अनुमान होता है कि प्राय जैसे एक ही राजा को बौद्ध, जैन और पौराणिक लोग भिन्न-भिन्न नाम से पुकारते हैं वैसे ही दर्शक, कुणीक और अजातशत्रु ये नाम एक ही व्यक्ति के हैं। जैसे बिंबसार के लिये विंध्यसेन और श्रेणिक, ये दो नाम भी मिलते हैं। किन्तु प्रोफेसर गेजर अपने महावंश के अनुवाद में बड़ी दृढ़ता से अजातशत्रु और उदयाश्व के बीच में दर्शक नाम के किसी राजा के होने का विरोध करते हैं। कथासरित्सागर के अनुसार प्रद्योत ही पद्मावती के पिता का नाम था। इन सब बातों के देखने से यही अनुमान होता है कि पद्मावती बिंबसार की बड़ी रानी कोशला (वासवी) के गर्भ से उत्पन्न मगध राजकुमारी थी।

नवीन उन्नतशील राष्ट्र मगध

जिसने कौरवों के बाद महान साम्राज्य भारत में स्थापित किया, इस नाटक की घटना का केन्द्र है। मगध को कोशल का दिया हुआ राजकुमारी कोशला (वासवी) के दहेज में काशी का प्रान्त था, जिसके लिये मगध के राजकुमार अजातशत्रु और प्रसेनजित् में युद्ध हुआ। इस युद्ध का कारण, काशी प्रान्त के आय-कर लेने का संघर्ष था। 'हरितमात-'वद्धकी-सूकर' और 'तच्छ सूकर-जातक' की कथाओं का इसी घटना से सम्बन्ध है।

अजातशत्रु जब अपने पिता के जीवन में ही राज्याधिकार का भोग कर रहा था और जब उसकी विमाता कोशलकुमारी वासवी अजात के द्वारा एक प्रकार उपेक्षिता सी हो रही थी, उस समय उसके पिता (कोशल-नरेश) प्रसेनजित् ने उद्योग किया कि मेरे

दिये हुए काशी प्रान्त की आय-कर वासवी को ही मिले। निदान, इस प्रश्न को लेकर दो युद्ध हुए। दूसरे युद्ध में अजातशत्रु बन्दी हुआ। सम्भवतः इस बार उदयन ने भी कोशल को सहायता दी थी। फिर भी निकट सम्बन्धी जानकर समझौता होना अवश्यम्भावी था इसलिये प्रसेनजित ने मैत्री चिरस्थायी करने के लिये और अपनी बात भी रखने के लिये, अजातशत्रु से अपनी दुहिता वाजिराकुमारी का ब्याह कर दिया।

अजातशत्रु के हाथ से उसके पिता बिम्बसार की हत्या होने का उल्लेख भी मिलता है। 'थुस-जातक-कथा' अजातशत्रु का अपने पिता से राज्य छीन लेने के सम्बन्ध में भविष्यद्वाणी के रूप से कही गई है। परन्तु बुद्धघोष ने बिम्बसार का बहुत दिन तक अधिकारच्युत होकर बन्दी की अवस्था में रहना लिखा है। और, जब अजातशत्रु को पुत्र हुआ तब उसे पैतृक स्नेह का मूल्य समझ में आया। उस समय वह स्वयं पिता को कारागार से मुक्त करने के लिये गया, किन्तु उस समय वहाँ महाराज बिम्बसार की अन्तिम अवस्था थी। इस तरह से भी पितृहत्या का कलङ्क उस पर आरोपित किया जाता है। किन्तु कई विद्वानों के मत में इसमें सन्देह है कि अजात ने वास्तव में पिता को बन्दी बनाया, या मार डाला था। उस काल की घटनाओं को देखने से प्रतीत होता है कि बिम्बसार पर

गौतम बुद्ध

का अधिक प्रभाव पड़ा था। उसने अपने पुत्र का उद्धत स्वभाव देख कर जो कि गौतम के विरोधी देवदत्त के प्रभाव में विशेष रहता था, स्वयं सिंहासन छोड़ दिया होगा।

इसका कारण भी है। अजातशत्रु की माता छलना, वैशाली के राजवंश की थी, जो जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी की निकट

सम्बन्धिनी थी। वैशाली की वृज जाति (लिच्छवी) अपने गोत्र के महावीर स्वामी का धर्म विशेष रूप से मानती थी। और, छलना का झुकाव अपने कुल धर्म की ओर अधिक था। इधर देवदत्त, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने गौतमबुद्ध के मार डालने का एक भारी षड्यन्त्र रचा था, और किशोर अजात को अपने प्रभाव में लाकर राजशक्ति से भी उसमें सहायता लेना चाहता था—चाहता था कि गौतम से वह अहिंसा की ऐसी व्याख्या संघ में प्रचारित करावे जो कि जैन धर्म से मिलती हो। और, उसके इस उद्देश्य में राजमाता की सहानुभूति का भी मिलना स्वाभाविक ही था।

बौद्धमत में बुद्ध ने कृत दृष्ट और उद्दिष्ट इन्हीं तीन प्रकार की हिंसाओं का निषेध किया था। यदि भिक्षा में मांस मिले तो वर्जित नहीं था। किन्तु देवदत्त यह चाहता था कि 'संघ में यह नियम हो जाय कि कोई भिक्षु मांस खाय ही नहीं।' गौतम ने ऐसी आज्ञा नहीं प्रचारित की। देवदत्त को धर्म के बहाने छलना की सहानुभूति मिली और बड़ी रानी तथा बिम्बसार के साथ जो बुद्ध के भक्त थे शत्रुता की जाने लगी।

इसी गृहकलह को देख कर बिम्बसार ने स्वयं सिंहासन त्याग दिया होगा। और राजशक्ति के प्रलोभन से अजात को अपने पिता पर सन्देह रखने कारण हुआ होगा, और विशेष नियन्त्रण की भी आवश्यकता रही होगी। देवदत्त और अजात के कारण गौतम को कष्ट पहुँचाने का निष्फल प्रयास हुआ। सम्भवत इसी से अजात की क्रूरताओं का बौद्धसाहित्य में बड़ा अतिरंजित वर्णन मिलता है।

कोशलनरेश प्रसेनजित्

के—शाक्य-दासी कुमारी के गर्भ से उत्पन्न—कुमार का नाम विरुद्धक था। विरुद्धक की माता का नाम जातकों में वासभ' खत्तिया

मिलता है। किन्तु हमने उसका नाम शक्तिमती रख लिया है। प्रसेनजित् अजात के पास सहायता के लिये राजगृह आया था, किन्तु, 'भद्दसाल जातक' में इसका विस्तृत विवरण मिलता है कि विद्रोही विरुद्धक गौतम के कहने पर फिर से अपनी पूर्व मर्यादा पर अपने पिता के द्वारा अभिषिक्त हुआ।

इसने कपिलवस्तु का जनसंहार इसलिये चिढ़ कर किया था कि शाक्यों ने धोखा देकर प्रसेनजित् को शाक्यकुमारी के बदले एक दासी कुमारी ब्याह दिया था। जिससे दासी-सन्तान होने के कारण विरुद्धक को अपने पिता के द्वारा अपदस्थ होना पड़ा था। शाक्यों के संहार के कारण बौद्धों ने इसे भी क्रूरता का अवतार अंकित किया है। 'भद्दसाल-कथा' के सम्बन्ध में जातक में कोशल सेनापति बन्धुल और उसकी स्त्री मल्लिका का विशद वर्णन है। इस बन्धुल के पराक्रम से भीत होकर कोशल-नरेश ने इसको हत्या करा डाली थी। और इसका बदला लेने के लिये, उसके भागिनेय दीर्घकारायण ने प्रसेनजित् से राज्यचिह्न लेकर क्रूर विरुद्धक का कोशल के सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

प्रसेन और विरुद्धक सम्बन्धिनी घटना का वर्णन अवदान कल्पलता में भी मिलता है। बिम्बसार और प्रसेन दोनों के ही पुत्र विद्रोही थे। और तत्कालीन धर्म्म के उलट-फेर में गौतम के विरोधी थे। इसलिये क्रूरतापूर्ण अतिरंजित चित्र इनका बौद्ध इतिहास में मिलता है। उस काल के राष्ट्रों के उलट फेर में धर्म के दुराग्रह ने भी सम्भवतः बहुत सा भाग लिया था, ऐसा प्रतीत होता है।

मागन्धी, जिसके उसकाने से पद्मावती पर उदयन बहुत अस न्तुष्ट हुए थे यह ब्राह्मण कन्या थी, जिसको उसके पिता गौतम से ब्याहना चाहते थे और गौतम ने उसका तिरस्कार किया था।

इसी मागन्धी को, और बौद्धों के साहित्य में वर्णन आम्रपाली (अम्बापाली) को, हम ने कल्पना द्वारा एक में मिलाने का साहस किया है । अम्बापाली पतिता और वेश्या होने पर भी गौतम के द्वारा अन्तिम काल में पवित्र की गई ।

लिच्छिवियों का निमन्त्रण अस्वीकार करके गौतम ने उसकी भिक्षा स्वीकार की थी । बौद्धों की श्यामावती वेश्या आम्रपाली, मागन्धी और इस नाटक की श्यामा वेश्या का एकत्र सङ्घटन कुछ विचित्र तो होगा किन्तु चरित्र का विकास और कौतुक बढ़ाना ही इसका उद्देश्य है ।

सम्राट् अजातशत्रु ।

अजातशत्रु के समय में मगध साम्राज्य रूप में परिणित हुआ । क्योंकि अङ्ग और वैशाली को इसने स्वयं विजय किया था । और काशी अब निर्विवाद रूप से उसके अधीन हो गया । कोशल भी इसका मित्र राष्ट्र था । उत्तरीय भारत में यह इतिहास काल का प्रथम सम्राट् हुआ ।

मथुरा के समीप परखम गाँव में मिली हुई अजातशत्रु की मूर्ति देख कर मिस्टर जायसवाल की सम्मति है कि अजातशत्रु ने सम्भवत पश्चिम में मथुरा तक भी विजय किया था ।

—लेखक ।



सम्मति ।

गीता-सम्पादक श्रीयुत बा० सम्पूर्णानन्द, बी० एम, एस० सी०, एल० टी० महोदय ने, छपने के समय में ही इस नाटक को देखकर जो सम्मति इसके सम्बन्ध में प्रदान की है, वह निम्नलिखित अनुसार है—

"आजकल हिन्दी के पाठकों की जैसी अभिरुचि होती जाती है, उसे देखकर हर्ष होता है। लोग पारसी कम्पनियों के 'तमाशा' से मुंह मोड़ते जाते हैं और ऐसे नाटकों की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं, जिनका आधार या तो पौराणिक उपाख्यानों या हमारे प्राचीन इतिहास की घटना-मालाओं में मिलता है। इससे हमारी भारतीय सभ्यता की अन्तरात्मा, हमारे भारतीय आदर्शों, का बहुत ही स्थायी चित्र पाठकों [और नाटक के अभिनीत होने पर प्रेक्षकों] के हृदय-पटल पर खिंच जाता है। उपदेश मिलता है, पर उसमें रूक्षता नहीं होती। चेतावनी मिलती है, पर उसमें कर्कशता नहीं रहती। शिक्षा का लक्ष्य मस्तिष्क के स्थान में हृदय बन जाता है। नाटक का जातीय अभ्युत्थान में बड़ा ऊँचा स्थान होता है। अब भारतीय, विशेषतः हिन्दी नाटक उस स्थान की ओर बढ़ रहा है।

पात्री।

वासवी—मगधसम्राट् की बड़ी रानी।

छलना— ,, छोटी रानी और राजमाता।

पद्मावती—मगध की राजकुमारी,	उदयन की रानियाँ।
मागन्धी (श्यामा)—आम्रपाली,	
वासवदत्ता—उदयन की बड़ी रानी।	

शक्तिमती (महामाया)—शाक्यकुमारी, कोशल की रानी।

मल्लिका—सेनापति बन्धुल की पत्नी।

वाजिरा—कोशल की राजकुमारी।

नवीना—सेविका।

विजया, सरला, कञ्चुकी, दासी, नर्त्तकी इत्यादि।



अजातशत्रु

अङ्क पहिला

दृश्य पहिला

स्थान प्रकोष्ठ।

(राजकुमार अजातशत्रु, पद्मावती, समुद्रदत्त और शिकारी लुब्धक)

अजात०—क्यों रे लुब्धक! आज तू मृगशावक नहीं लाया। हमारा प्यारा चित्रक अब किससे खेलेगा।"

समुद्र०—"कुमार! यह बड़ा दुष्ट हो गया है। आज कई दिनों से यह मेरी बात सुनता ही नहीं।"

लुब्धक—"कुमार! हम तो आज्ञाकारी दास हैं। आज हम ने जब एक मृगशावक को पकड़ा तो उसकी माता ने ऐसी करुण



सम्राट् अजातशत्रु की प्रतिमा ।

(परिखम्-मथुरा प्रान्त में प्राप्त, मथुरा म्यूज़ियम में सुरक्षित)

आदर्श प्रेस, काशी ।

अजातशत्रु

अङ्क पहिला

दृश्य पहिला

स्थान प्रकोष्ठ।

(राजकुमार अजातशत्रु, पद्मावती, समुद्रदत्त और शिकारी लुब्धक)

अजात०—"क्यों रे लुब्धक ! आज तू मृगशावक नहीं लाया ! हमारा प्यारा चित्रक अब किससे खेलेगा।"

समुद्र०—"कुमार ! यह बड़ा दुष्ट हो गया है। आज कई दिनों से यह मेरी बात सुनता ही नहीं।"

लुब्धक०—"कुमार ! हम तो आज्ञाकारी दास हैं। आज हम ने जब एक मृगशावक को पकड़ा तो उसकी माता ने ऐसी करुण



सम्राट् अजातशत्रु की प्रतिमा ।

(परिखम-मथुरा प्रान्त में प्राप्त, मथुरा म्यूज़ियम में सुरक्षित)

आदर्श प्रेस, काशी ।

हिंस्र निष्ठुरता निदर्शन भेजिये,
विश्व में हैं यही करने के लिये।

समुद्र०—"देवी! करुणा और स्नेह के लिये तो रमणी जगत में हुई हैं, किन्तु मनुष्य भी क्या वही हो जाय?"

पद्मा०—"चुप रहो समुद्र! क्या क्रूरता ही मनुष्यता का परिचय है। ऐसी चाटुकारियाँ भावी शासक को अच्छा नहीं बनातीं।"

(छलना का प्रवेश)

छलना०—"पद्मावती! यह तुम्हारा अविचार है। कुणीक का हृदय छोटी छोटी बातों में तोड़ देना, उसे डरा देना, उसकी मानसिक उन्नति में बाधा देना है।"

पद्मा०—"माँ, यह क्या कह रही हो! कुणीक मेरा भाई है, मेरे सुखों की आशा है, मैं उसे कर्त्तव्य क्यों न बताऊँ? क्या उसे चाटुकारों की चाल में फँसते देखूँ और कुछ न कहूँ।"

छलना०—"तो क्या तू उसे बोदा और डरपोक बनाना चाहती है? क्या निर्बल हाथों से भी कोई राजदण्ड ग्रहण कर सकता है?"

पद्मा०—"माँ, क्या कठोर और क्रूर हाथों से ही राज्य सुशासित होता है? ऐसा विषवृक्ष लगाना क्या ठीक होगा? अभी कुणीक किशोर है। यही समय सुशिक्षा का है। मैं अन्तःकरण से भाई कुणीक की भलाई चाहती हूँ।

णाभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा कि उसे छोड़ देते ही बना। अपराध क्षमा हो।"

अजात०—"हाँ—तो फिर मैं तुम्हारी चमड़ी उधेड़ता हूँ। समुद्र। ला तो मेरा कोड़ा।"

समुद्र०—(कोड़ा लाकर देता है) "लीजिये। इसकी अच्छी पूजा कीजिए।"

पद्मावती—(कोड़ा पकड़ कर) "भाई कुणीक! तुम इतने दिनों में ही बड़े निष्ठुर हो गये। भला उसे क्यों मारते हो?"

अजात०—"उसने मेरी आज्ञा क्यों नहीं मानी?"

पद्मा०—"उसे मैंने ही मना किया था, उसका क्या अपराध।"

समुद्र०—(धीरे से) "तभी तो उसको आजकल गर्व हो गया है। किसी की बात नहीं सुनता।"

अजात०—"तो इस प्रकार तुम उसे मेरा अपमान करना सिखाती हो।"

पद्मा०—"यह मेरा कर्त्तव्य है कि तुमको अभिशापों से बचाऊँ और अच्छी बातें सिखाऊँ। जा रे लुब्धक, जा, चला जा। कुमार जब मृगया खेलने जावें तो उनकी सेवा करना। निरीह जीवों को पकड़ कर निर्दयता सिखाने में सहायक न होना।"

अजात०—"यह तुम्हारी बढ़ाबढ़ी मैं सहन नहीं कर सकता?"

पद्मा०—मानवी है सृष्टि करुणा के लिये,
स्नेह का सद्भाव भरने के लिये।

हिंस्र निष्ठुरता निदर्शन भेडिये,
विश्व में हैं यहा करने के लिये।

समुद्र०—"देवी! करुणा और स्नेह के लिये तो रमणी जगत में हुई हैं, किन्तु मनुष्य भी क्या वही हो जाय।"

पद्मा०—"चुप रहो समुद्र! क्या क्रूरता ही मनुष्यता का परिचय है। ऐसी चाटूक्तियाँ भावी शासक को अच्छा नहीं बनातीं।"

(छलना का प्रवेश)

छलना०—"पद्मावती! यह तुम्हारा अविचार है। कुणीक का हृदय छोटी छोटी बातों में तोड़ देना, उसे डरा देना, उसकी मानसिक उन्नति में बाधा देना है।"

पद्मा०—"माँ, यह क्या कह रही हो! कुणीक मेरा भाई है, मेरे सुखों की आशा है, मैं उसे कर्त्तव्य क्यों न बताऊँ? क्या उसे चाटुकारों की चाल में फँसते देखूँ और कुछ न कहूँ।"

छलना०—"तो क्या तू उस भीरु और डरपोक बनाना चाहती है? क्या निर्बल हाथों से भी कोई राजदण्ड ग्रहण कर सकता है?"

पद्मा०—"माँ, क्या कठोर और क्रूर हाथों से ही राज्य सुशासित होता है? ऐसा विषवृक्ष लगाना क्या ठीक होगा? अभी कुणीक किशोर है। यही समय सुशिक्षा का है। मैं अन्तःकरण से भाई कुणीक की भलाई चाहती हूँ।

सुकोमल मृत्तिका है से भरी सुथरी हुई क्यारी।
न उसमें कंकडी काँटे सरलता से सिंची सारी॥
लगा दो जो कि चाहो, है तुम्हारे हाथ में सब कुछ।
कँटीली झाड़ियाँ चाहे सुमन वाली लता प्यारी॥
हृदय इन होनहारों का उसी क्यारी सदृश होगा।
सुशिक्षा बीज बो दोगे तभी इसमें सुफल होगा॥

कुणीक—"फिर तुमने मेरी आज्ञा क्यों भङ्ग होने दी? दूसरे अनुचर इसी प्रकार मेरी आज्ञा का तिरस्कार करन साहस नहीं करेंगे?"

छलना—"यह कैसी बात?"

कुणीक—"मेरे चित्रक के लिये जो मृग आता था उसे आने के लिये लुब्धक रोक दिया गया। आज वह कैसे खेलेगा

छलना—"पद्मा! क्या तू इसकी मंगल कामना करती इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुकों की मोटी सीख है। राजा होगा, जिसे शासन करना होगा, वह भिखमंगों का नहीं पढ़ सकता। राजा का परम धर्म न्याय है, वह दण आधार पर है। क्या तुझे नहीं मालूम कि वह भी हिं मूलक है?"

पद्मा—"माँ! क्षमा हो। मेरी समझ में तो मनुष्य होना, र होने से अच्छा है।"

छलना—"तू कुटिलता की मूर्ति है। कुणीक को अयोग्य शासक बना कर उसका राज्य आत्मसात करने के लिये कौशाम्बी से आई है। कौशलमयी शत्रुता किया चाहती है।"

पद्मा०—"माँ। बहुत हुआ, अन्यथा तिरस्कार न करो। मैं माजही चली आऊँगी।" (वासवी का प्रवेश)

वासवी—"वत्स कुणीक! कई दिनों से तुमको देखा नहीं। मेरे मन्दिर में इधर क्यों नहीं आए? कुशल तो है?"

(कुणीक के सर पर हाथ फेरती है)

कुणीक—"नहीं माँ, मैं तुम्हारे यहाँ न आऊँगा जब तक पद्मा घर न जायगी।"

वासवी—"क्यों! पद्मा तो तुम्हारी ही बहिन है। उसने क्या अपराध किया है? वह तो बड़ी सीधी लड़की है।"

छलना—(क्रोध से) "वह सीधी है और तुम सीधी हो। आज से कभी कुणीक तुम्हारे पास न जाने पावेगा और तुम भी यदि भलाई चाहो तो प्रलोभन न देना।"

वासवी—"छलना! बहिन! यह क्या कह रही हो। मेरा वत्स कुणीक! प्यारा कुणीक! हा भगवन्। मैं उसे देखने न पाऊँगी। मेरा क्या अपराध—"

कुणीक—"यह पद्मा, बार बार मुझे अपदस्थ किया चाहती है, और जिस बात को मैं कहता हूँ उसे ही रोक देती है। क्या मैं इसका दास हूँ।"

वासवी—"यह मैं क्या देख रही हूँ। छलना! यह गृहविद्रोह की आग तू क्यों जलाया चाहती है। राजपरिवार में क्या सुख अपेक्षित नहीं है—

"बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह बढ़ा उनके मनमें,
कुल-लक्ष्मी हो मुदित, भरा हो मंगल उनके जीवन में,
बन्धुवर्ग हों सम्मानित, हों सेवक सुखी प्रणत अनुचर
शान्ति पूर्ण हो स्वामी का मन, तो स्पृहणीय न हो क्यों घर

छलना—"यह जिनको खाने को नहीं मिलता उन्हें चाहिए। जो प्रभु हैं, जिन्हे पर्य्याप्त है, उन्हें किसी की क्या चिन्ता—जो व्यर्थ अपनी आत्मा को गँवावें।"

वासवी—"क्या तुम मेरा भी अपमान किया चाहती हो। पद्मा, तो जैसी मेरी वैसी ही तुम्हारी, उसे कहने का तुम्हे अधिकार है। किन्तु तुम तो मुझ से छोटी हो, शील और विनय का यह दुष्ट उदाहरण सिखा कर बच्चों की क्यों हानि कर रही हो।"

छलना—(स्वगत) "मैं छोटी हूँ, यह अभिमान तुम्हारा अभी गया नहीं है।" (प्रकट) "मैं छोटी हूँ या बड़ी, किन्तु राजमाता हूँ। अजात को शिक्षा देने का मुझे अधिकार है। उसे राजा होना है। वह भिक्षमंगों का—जो अकर्म्मण्य होकर राज्य छोड़ कर दरिद्र हो गये हैं—उपदेश नहीं ग्रहण करने पावेगा।"

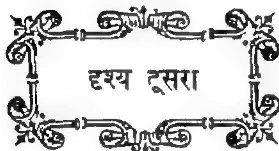
पद्मा०—"माँ, अब चलो! यहाँ से चलो। नहीं तो मैं ही आती हूँ।"

वासवी— "जाती हूँ बेटी। किन्तु छलना—सावधान! यह असत्य गर्व मानवसमाज का बड़ा भारी शत्रु है।"

(पद्मा और वासवी जाती हैं)

पट परिवर्तन।





स्थान राजकीय प्रकोष्ठ।

(महाराज बिम्बसार एकाकी बैठे हुए आपही आप कुछ विचार कर रहे हैं)

म० बिम्बसार—"आहा, जीवन की क्षणभंगुरता देख कर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों से लिखे हुए अदृष्ट के लेख जब धीरे धीरे लोप होने लगते हैं तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है, और जीवन-संग्राम में प्रवृत्त होकर अनेक अकारण ताण्डव करता है। और उधर प्रकृति उसे अन्धकार की गुफा में ले जाकर उसका शान्ति

मय, रहस्यपूर्ण आशय का चिट्ठा समझाने का प्रयत्न करती है। किन्तु वह कब मानता है? मनुष्य व्यर्थ महत्त्व की आकांक्षा में मरता है। अपनी नीची किन्तु सुदृढ़ परिस्थिति में उसे संतोष नहीं होता। नीचे से ऊँचे चढ़ना ही चाहता है। चाहे फिर गिरे तो भी क्या?"

छलना—(प्रवेश करके) "और नीचे के लोग वहीं रहें। वे मानो कुछ अधिकार नहीं रखते? ऊपर वाले उन्हें चढ़ने भी देना नहीं चाहते।"

म० बिम्बसार—(चौंक कर) "कौन छलना?"

छलना—"हाँ, महाराज! मैं ही हूँ।"

म० बिम्बसार—"तुम्हारी बात मैं नहीं समझ सका।"

छलना—"साधारण जीवों में भी उन्नति की चेष्टा दिखाई देती है। महाराज! इसकी बड़ी चाह है।

हृदय के उपकरण हैं, एक से हैं भी हृदय सबको,
हृदय के हेतु साधन ही बराबर हैं नहीं सब को।
उन्हें जब तुम दिखाकर एक छोटे को चिढ़ाते हो,
कहो यह लोभ समता का सम्हालेगा भला कब, को।
बड़ों की है बुराई जो उन्हें छोटा समझते हैं।
झुके हैं जो विनय से ही उन्हें खोटा समझते हैं।

म० बिम्बसार—"तब भी।"

छलना—"यही कि मैं छोटी हूँ इसीलिये पटरानी नहीं हो सकी, और वह मुझे इसी बात पर अपदस्थ किया चाहती है।"

म० बिम्बसार—"छलना! यह क्या! तुम तो राजमाता हो। देवी वासवी के लिये थोड़ा सा भी सम्मान कर लेना तुम्हें विशेष नीचा नहीं बना सकता—उसने कभी तुम्हारी अवहेलना भी तो नहीं की।"

छलना—"इन भुलावों में मैं नहीं आ सकती। महाराज! मुझ में लिच्छिवी रक्त बड़ी शीघ्रता से दौड़ा करता है। यह नीरव अपमान, यह सांकेतिक घृणा, मुझे सहन नहीं, और जब कि खुलकर अजात का अपकार किया जा रहा है तब तो—

म० बिम्बसार—"ठहरो! तुम्हारा यह अभियोग अन्यायपूर्ण है। क्या इसी कारण तो बेटी पद्मावती नहीं चली गई? क्या इसी कारण तो अजात मेरी भी आज्ञा सुनने में आनाकानी करने नहीं लगा है? यह कैसा उत्पात मचाया चाहती हो?—"

छलना—"मैं उत्पात रोकना चाहती हूँ। आपको अजात के लिये युवराज्याभिषेक की घोषणा आजही करनी पड़ेगी।"

वासवी—(प्रवेश करके) "नाथ, मैं भी इसमें सहमत हूँ। मैं चाहती हूँ कि यह उत्सव देख कर और आपकी आज्ञा लेकर मैं कोशल जाऊँ। *सुदत्त आज आया है, भाई ने मुझे बुलाया है।"*

म० बिम्बसार—"कौन, देवी वासवी!"

वासवी—"हाँ महाराज।"

कंचुकी— (प्रवेश करके) "महाराज ! जय हो ! भगवान् तथागत गौतम आना चाहते हैं।"

म० बिम्बसार—"सादर लिवा लाओ—" (कंचुकी का प्रस्थान)

"छलना ! हृदय का आवेग कम करो, महाश्रमण के सामने दुर्बलता न प्रकट होने पावे—

(अजात को साथ लिये हुए गौतम का प्रवेश)

(सब नमस्कार करते हैं)

गौतम—"कल्याण हो ! शान्ति मिले !"

म० बिम्बसार—"भगवन्, आपने पधार कर मुझे अनुगृहीत किया।"

गौतम—"राजन् ! कोई किसी को अनुगृहीत नहीं करता है। विश्वभर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है, जो प्राणी मात्र में समदृष्टि रखती है।—

गोधूली के राग पटल में स्नेहाञ्चल फहराती है।
स्निग्ध उषा के शुभ्रगगन में हास विलास दिखाती है॥
मुग्ध मधुर बालक के मुख पर चन्द्रकान्ति बरसाती है।
निर्निमेष ताराओं से वह ओस बूँद भर लाती है॥
हिंसक जीवों को भी वह ही प्रेम उमङ्ग दिखलाती है;
क्रूर हृदय पत्थर को भी वा कभी न कभी गलाती है॥
निष्ठुर आदि सृष्टि पशुओं की विजित हुई इस करुणा से।
मानव का महत्त्व जगती पर फैला अरुणा करुणा से॥

वासवी—"करुणामूर्ति ! हिंसा से रँगी हुई सर्व्वसहा वसुन्धरा आपके चरणों के स्पर्श से अवश्यही स्वच्छ हो जायगी। उसकी कलंक-कालिमा धुल जायगी। धन्य हैं।"

गौतम—"शुद्ध बुद्धि तो सदैव निर्लिप्त रहती है। केवल साक्षी रूप से वह सब दृश्य देखती है। तब भी, इन सांसारिक झगड़ों में उसका उद्देश होता है कि न्याय का पक्ष विजयी हो—वह स्वत उस अभियोग में लिप्त न हो, किन्तु अन्याय को प्रबल देख कर उदासीन अवश्य होगी। उसी उदासीनता का प्रतिपादन होता है, वही न्याय का समर्थन है। तटस्थ की यही शुभेच्छा सत्य से प्रेरित होकर समस्त सदाचारों की नींव विश्व में स्थापन करती है। यदि वह ऐसा न करे तो अप्रत्यक्ष रूप से अन्याय का समर्थन हो जाता है—राजन्, हम विरक्तों को भी इसीलिये विडम्बना पूर्ण राजदर्शन की आवश्यकता हो जाती है।"

म० बिम्बसार—"भगवान की शान्ति वाणी की धारा प्रलय की नरकाग्नि को भी बुझा देगी। मैं कृतार्थ हुआ—"

छलना—(नीचा सर कर के) "यदि आज्ञा हो तो मैं जाऊँ ?"

गौतम—"रानी ! तुम्हारे पति और देश के सम्राट् के रहते हुए मुझे कोई अधिकार नहीं है कि तुम्हें आज्ञा दूँ। तुम इन्हीं से आज्ञा ले सकती हो।"

म० बिम्बसार—(घूर कर देखते हुए)"हाँ, छलना ! तुम जा

सकती हो ! किन्तु अजात को न ले जाना—क्यों कि तुम्हारा मार्ग टेढ़ा है। अभागिनी !"

(छलना का क्रोध से प्रस्थान)

गौतम—"यह तो मैं पहिले से ही समझता था, किन्तु छोटी रानी को और तुम लोगों को भी विचार से काम लेना चाहिये।"

म० बिम्बसार—"भगवन ! हमारा क्या अविचार आपने देखा।"

गौतम—"शीतल वाणी—मधुर व्यवहार—से क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते ? राजन, संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यङ्ग है। हृदय में जितना यह घुसता है उतनी कटार नहीं। वाक्-संयम विश्वमैत्री की पहिली सीढ़ी है। अस्तु, अब मैं तुम से एक काम की बात कहा चाहता हूँ। क्या तुम मानोगे—क्यों महारानी ?"

म० बिम्बसार—"अवश्य।"

गौतम—"तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो। और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो, क्यों कुणीक ! तुम राज्य का कार्य मन्त्रि-परिषद की सहायता से चला सकोगे।"

कुणीक—"क्यों नहीं। पिताजी यदि सहमत हों।"

गौतम—"यह बोझ जहाँ तक शीघ्र हो यदि एक अधिकारी व्यक्ति को सौंप दिया जाय तो मानव को प्रसन्न ही होना चाहिये। क्योंकि राजन, इससे कभी न कभी तुम हटाये जाओगे। जैसा कि विश्व भर का नियम है। फिर, यदि तुम उदारता से उसे सौंप कर छोड़ दो तो इसमें क्या दुःख—"

म० बिम्बसार—"योग्यता होनी चाहिए महाराज ! यह बड़ा गुरुतर कार्य है । नवीन रक्त राज्यश्री को सदैव तलवार के दर्पण में देखा चाहता है ।"

गौतम—(हँस कर) "ठीक है । किन्तु, काम करने के पहिले तो किसी ने भी आज तक विश्वस्त प्रमाण नहीं दिया कि वह कार्य के योग्य है । यह बहाना तुम्हारा राज्याधिकार की आकांक्षा प्रकट कर रहा है । राजन् ! समझ लो, इस गृह विवाद और आन्तरिक झगड़ों से विश्राम लो ।"

वासवी—"भगवन ! मैं आपकी आज्ञा का अनुमोदन करती हूँ । हम लोगों को तो एक छोटा सा उपवन पर्य्याप्त है । मैं, नाथ के भी साथ रह कर सेवा कर सकूँगी ।"

म० बिम्बसार—"तब जैसी आप की आज्ञा । (कञ्चुकी से) राजपरिषद, सभागृह में एकत्र हो । कञ्चुकी ! शीघ्रता करो ।"

(कञ्चुकी का प्रस्थान)

पट परिवर्तन ।



सकती हो ! किन्तु अजात को न ले आना—क्यों कि तुम्हारा मार्ग टेढ़ा है । अभागिनी !"

(छलना का क्रोध से प्रस्थान)

गौतम—"यह तो मैं पहिले से ही समझता था, किन्तु छोटी रानी को और तुम लोगों को भी विचार से काम लेना चाहिये ।"

म० बिम्बसार—"भगवन ! हमारा क्या अविचार आपने देखा ।"

गौतम—"शीतल वाणी—मधुर व्यवहार—से क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते ? राजन, संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यङ्ग है । हृदय में जितना यह घुसता है उतनी कटार नहीं। वाक्-संयम विश्वमैत्री की पहिली सीढ़ी है । अस्तु, अब मैं तुम से एक काम की बात कहा चाहता हूँ। क्या तुम मानोगे—क्यों महारानी ?"

म० बिम्बसार—"अवश्य ।"

गौतम—"तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो । और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो, क्यों कुणीक ! तुम राज्य का कार्य मन्त्रि-परिषद् की सहायता से चला सकोगे ।"

कुणीक—"क्यों नहीं । पिताजी यदि सहमत हों ।"

गौतम—"यह बोझ जहाँ तक शीघ्र हो यदि एक अधिकारी व्यक्ति को सौंप दिया जाय तो मानव को प्रसन्न ही होना चाहिये । क्योंकि राजन, इससे कभी न कभी तुम हटाये जाओगे । जैसा कि विश्व भर का नियम है । फिर, यदि तुम उदारता से उसे भोग कर छोड़ दो तो इसमें क्या दुःख—"

म० बिम्बसार—"योग्यता होनी चाहिए महाराज ! यह बड़ा गुरुतर कार्य है। नवीन रक्त राज्यश्री को मदैव सलवार के दर्पण में देखा चाहता है।"

गौतम—(हँस कर) "ठीक है। किन्तु, काम करने के पहिले तो किसी ने भी आज तक विश्वस्त प्रमाण नहीं दिया कि वह कार्य के योग्य है। यह बहाना तुम्हारा राज्याधिकार की आकांक्षा प्रकट कर रहा है। राजन ! समझ लो, इस गृह-विवाद और आन्तरिक झगड़े से विश्राम लो।"

वासवी—"भगवन ! मैं आपकी आज्ञा का अनुमोदन करती हूँ। हम लोगों को तो एक छोटा सा उपवन पर्य्याप्त है। मैं, नाथ के भी साथ रह कर सेवा कर सकूँगी।"

म० बिम्बसार—"तब जैसी आप की आज्ञा। (कञ्चुकी से) राजपरिषद्, सभागृह में एकत्र हो। कञ्चुकी! शीघ्रता करो।"

(कञ्चुकी का प्रस्थान)

पट परिवर्तन।



सकती हो। किन्तु अजात को न ले जाना—क्या कि तुम्हारा मार्ग टेढ़ा है। अभागिनी !"

(छलना का क्रोध से प्रस्थान)

गौतम—"यह तो मैं पहिले से ही समझता था, किन्तु छोटी रानी को और तुम लोगों को भी विचार से काम लेना चाहिये।"

म० बिम्बसार—"भगवन्! हमारा क्या अविचार आपने देखा।"

गौतम—"शीतल वाणी—मधुर व्यवहार—से क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते? राजन, संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यङ्ग है। हृदय में जितना यह घुसता है उतनी कटार नहीं। वाक्-संयम विश्वमैत्री की पहिली सीढ़ी है। अस्तु, अब मैं तुम से एक काम की बात कहा चाहता हूँ। क्या तुम मानोगे—क्यों महारानी?"

म० बिम्बसार—"अवश्य।"

गौतम—"तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो। और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो, क्यों कुणीक! तुम राज्य का कार्य मन्त्रि परिषद् की सहायता से चला सकोगे।"

कुणीक—"क्यों नहीं। पिताजी यदि सहमत हों।"

गौतम—"यह बोझ जहाँ तक शीघ्र हो यदि एक अधिकारी व्यक्ति को सौंप दिया जाय तो मानव को प्रसन्न ही होना चाहिये। क्योंकि राजन्, इससे कभी न कभी तुम हटाये जाओगे। जैसा कि विश्व भर का नियम है। फिर, यदि तुम उदारता से उसे भोग कर छोड़ दो तो इसमें क्या दुःख—"

म० बिम्बसार—"योग्यता होनी चाहिए महाराज ! यह बड़ा गुरुतर कार्य है। नवीन एक राज्यश्री का स्वरूप तलवार के दर्पण में देखा चाहता है।"

गौतम—(हँस कर) "ठीक है। किन्तु, काम करने के पहिले तो किसी ने भी आज तक विश्वस्त प्रमाण नहीं दिया कि वह कार्य के योग्य है। यह बहाना तुम्हारा राज्याधिकार की आकांक्षा प्रकट कर रहा है। राजन ! समझ लो, इस गृह विवाद और आन्तरिक झगड़ों से विश्राम लो।"

वासवी—"भगवन ! मैं आपकी आज्ञा का अनुमोदन करती हूँ। हम लोगों को तो एक छोटा सा उपवन पर्य्याप्त है। मैं, नाथ के भी साथ रह कर सेवा कर सकूँगी।"

म० बिम्बसार—"तब जैसी आप की आज्ञा। (कञ्चुकी से) राजपरिषद्, सभागृह में एकत्र हो। कञ्चुकी ! शीघ्रता करो।"

(कञ्चुकी का प्रस्थान)

पट परिवर्त्तन।



सकती हो । किन्तु अजात को न ले जाना—क्यों कि तुम्हारा मार्ग टेढ़ा है । अभागिनी !"

(छलना का क्रोध से प्रस्थान)

गौतम—"यह तो मैं पहिले से ही समझता था, किन्तु छोटी रानी को और तुम लोगों को भी विचार से काम लेना चाहिये ।"

म० बिम्बसार—"भगवन् ! हमारा क्या अविचार आपने देखा ।"

गौतम—"शीतल वाणी—मधुर व्यवहार—से क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते ? राजन, संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यङ्ग है । हृदय में जितना यह घुसता है उतनी कटार नहीं । वाक्-संयम विश्वमैत्री की पहिली सीढ़ी है । अस्तु, अब मैं तुम से एक काम की बात कहा चाहता हूँ । क्या तुम मानोगे—क्यों महारानी ?"

म० बिम्बसार—"अवश्य ।"

गौतम—"तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो । और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो, क्यों कुणीक ! तुम राज्य का कार्य मन्त्रि-परिषद की सहायता से चला सकोगे ।"

कुणीक—"क्यों नहीं । पिताजी यदि सहमत हों ।"

गौतम—"यह बोझ जहाँ तक शीघ्र हो यदि एक अधिकारी व्यक्ति को सौंप दिया जाय तो मानव को प्रसन्न ही होना चाहिये । क्योंकि राजन्, इससे कभी न कभी तुम हटाये जाओगे । जैसा कि विश्व भर का नियम है । फिर, यदि तुम उदारता से उसे भोग कर छोड़ दो तो इसमें क्या दुःख—"

सुदत्त—"नहीं, मुझे एक क्षण यहाँ ठहरना अनुचित समझ पड़ता है। मैं इसीलिये आपको खोज कर मिला हूँ कि मुझे यहाँ का समाचार कोशल में शीघ्र पहुँचाना होगा। इसलिये युवराज से मेरी ओर से क्षमा माँग लेना।"

(जाता है)

देवदत्त—"चलो युवराज के पास चलें।"

(दोनों जाते हैं)

(पट परिवर्तन)

दृश्य चौथा

स्थान—उपवन।

(महाराज बिम्बसार और महारानी वासवी)

बिम्बसार—"देवी, तुम कुछ समझती हो कि मनुष्य के लिये एक पुत्र का होना क्यों इतना आवश्यक समझा गया है।"

वासवी—"नाथ! मैं तो समझती हूँ कि वात्सल्य नाम का जो पुनीत स्नेह है उसी के पोषण के लिये।"

बिम्बसार—"स्नेहमयी! यह भी हो सकता है, किन्तु मेरे विचार में कोई और ही बात आती है।"

आपने नियम तोड़ा है, उसीतरह राष्ट्रभेद कर के क्या देश का नाश कराया चाहते हैं ?"

देवदत्त—"यह पुरानी मण्डली का गुप्तचर है। समुद्र! युवराज से कहो कि इसका उपाय करें। यह विद्रोही है! इसका मुख बन्द होना चाहिये।"

जीवक—"ठहरो, मुझे कह लेने दो। मैं ऐसा डरपोक नहीं हूँ कि जो बात तुम से कहनी है वह मैं दूसरों से करूँ। मैं राजकुल का प्राचीन सेवक हूँ। तुम लोगों की यह कूट मन्त्रणा अच्छी प्रकार समझ रहा हूँ। इसका परिणाम कभी भी अच्छा नहीं। मुझे क्या डराते हो, मैं उन लोभियों में नहीं हूँ जो अनर्थकारी की भी सेवा करके अपने को धन्य समझें। मैं भी कल से महाराज बिम्बसार के पास रहूँगा। मैं, राज-सम्मान को भी अब तुच्छ समझता हूँ। किन्तु सावधान, मगध का अध पतन—दूर नहीं है।"

(जाता है

सुदत्त०—(प्रवेश करके) "आर्य समुद्रदत्त जी। कहिये, मेरे जाने का प्रबन्ध तो ठीक हो गया है न ? कोशल शीघ्र पहुँच जाना मेरे लिये आवश्यक है। महारानी तो अब जायेंगी नहीं क्योंकि मगधनरेश ने वानप्रस्थ आश्रम का अवलम्बन लिया है फिर मैं ठहर कर क्या करूँ ?"

स०दत्त०—"किन्तु युवराज ने तो अभी आपको ठहरने के लिये कहा है।"

सुमन्त—"नहीं, मुझे एक क्षण यहाँ ठहरना अनुचित समझ पड़ता है। मैं इसीलिये आपको खोज कर मिला हूँ कि मुझे यहाँ का समाचार कोशल में शीघ्र पहुँचाना होगा। इसलिये युवराज से मेरी ओर से क्षमा माँग लेना।"

(जाता है)

देवदत्त—"चलो युवराज के पास चलें।"

(दोनों जाते हैं)

(पट परिवर्तन)

दृश्य चौथा

स्थान—उपवन।

(महाराज बिम्बसार और महारानी वासवी)

बिम्बसार—"देवी, तुम कुछ समझती हो कि मनुष्य के लिये एक पुत्र का होना क्यों इतना आवश्यक समझा गया है।"

वासवी—"नाथ! मैं तो समझती हूँ कि वात्सल्य नाम का जो पुनीत स्नेह है उसी के पोषण के लिये।"

बिम्बसार—"स्नेहमयी! यह भी हो सकता है, किन्तु मेरे विचार में कोई और ही भाव आता है।"

वासवी—"यह क्या नाथ ?"

बिम्बसार—"संसारी को त्याग, तितिक्षा या विराग होने के लिये यह पहिला और सहज साधन है। क्योंकि मनुष्य अपनी ही आत्मा का भोग उसे भी समझता है। पुत्र को समस्त अधिकार देने में और वीतराग होने से, कुछ भी असंतोष नहीं रह जाता। यह बड़े बड़े लोभी भी कर सकते हैं।"

वासवी—"मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप को अधिकार से वंचित होने का दुःख नहीं।"

बिम्बसार—"दुःख तो नहीं देवी ! फिर भी इस कुणीक के व्यवहार से अपने अधिकार का ध्यान हो जाता है। तुम्हें विश्वास हो या न हो, किन्तु कभी कभी याचकों का लौट जाना मेरी वेदना का कारण होता है।"

वासवी—"तो नाथ ! जो आपका है वही न राज्य का है, उसी का अधिकारी कुणीक है, और जो कुछ मुझे मेरे पीहर से मिला है उसे जब तक मैं न छोड़ूँ तब तक तो मेरा ही है।"

बिम्बसार—"इसका क्या अर्थ है ?"

वासवी—"काशी का राज्य मुझे मेरे पिता ने आँचल में दिया है, उसकी आय आपके हाथ में आनी चाहिए और मगध की एक कौड़ी भी आप न छूएँ। नाथ ! मैं ऐसा द्वेष कहती हूँ किन्तु केवल आपका अपमान बचाने के लिये।"

बिम्बसार—"मुझे फिर उन्हीं झगड़ों में पड़ना होगा, देवी जिन्हें अभी छोड़ आया हूँ।"

(जीवक का प्रवेश)

जीवक—"महाराज की जय हो।"

बिम्बसार—"जीवक यह कैसा परिहास? यह सम्बोधन अब क्यों? यहाँ तुम कैसे आये?"

जीवक—"यह अभ्यास का दोष है। मैं श्रीमान के साथ ही रहूँगा। अब मुझे यह पुरानी गृहस्थी अच्छी नहीं लगती।"

बिम्बसार—"इस अकारण वैराग्य का कोई अर्थ भी है?"

जीवक—"कुछ नहीं राजाधिराज! और है तो यही कि जिस आत्मीय के लिये निष्कपट भाव से मैं परिश्रम करता हुआ सुख देने का प्रबन्ध करता हूँ वे भी विद्रोही हो जाते हैं फिर यह श्रम क्यों?"

वासवी—"महाराज, जीवन की सारी क्रियाओं का अन्त केवल अनन्त विश्राम में है। इस बाह्य हलचल का उद्देश्य आन्तरिक शान्ति है, फिर जब उसके लिये व्याकुल पिपासा जग उठे तब उसमें क्या देर?"

जीवक—"यही विचार कर मैं भी स्वामी की शरण आया हूँ क्योंकि समुद्रदत्त की बात मुझे नहीं रुचती। अदृष्ट सोच कर मैं भी आपका अनुगामी हो गया हूँ।"

बिम्बसार—"क्या अदृष्ट सोच कर, तुम अकर्मण्य होकर मेरी तरह बैठ जाना चाहते हो?"

जीवक—"नहीं महाराज! अदृष्ट तो मेरा सहारा है नियति की डोरी पकड़ कर मैं निर्भय कर्मकूप में कूद सकता हूँ। क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होवेगा, फिर कायर क्यों

वनू—कर्म से क्यों विरक्त रहूँ—मैं इस उच्छृङ्खल नवीन राजशक्ति का विरोधी होकर आपकी सेवा करने आया हूँ।"

वासवी—"यह तुम्हारी उदारता है, किन्तु हम लोगों के प्रति किस बात की शंका है ? जो तुम व्यस्त हो।"

जीवक—"देवदत्त, निष्ठुर देवदत्त के कुचक्र से महाराज की जीवनरक्षा होनी ही चाहिये।"

बिम्बसार—"आश्चर्य! यह मैं क्या सुन रहा हूँ। जीवक! मुझे भ्रान्ति में न डालो—विष का घड़ा मेरे हृदय पर न डालो। भला अब मेरे प्राण से मगध साम्राज्य को क्या सम्बन्ध है ? देवदत्त मुझ से क्यों इतना असन्तुष्ट है।"

जीवक—"बुद्धदेव की प्रतिद्वन्द्विता अन्य बनाये है—महत्वाकांक्षा उसे एक गर्त में गिरा रही है। उसकी यह आशा तब तक सफल न होगी जबतक आप जीवित रह कर गौतम की प्रतिष्ठा बढ़ाते रहेंगे, और उनकी सहायता करते रहेंगे।"

बिम्बसार—"मूर्खता है! यह देवदत्त की क्षुद्रता का परिचय है। भला आत्मबल या प्रतिभा किसी की प्रशंसा के बल से विश्व में स्वयं होती है। अपना सहारा वह स्वयं है, इसमें मेरी इच्छा वा अनिच्छा क्या है। वह दिव्य ज्योतिस्वरूप सब की आँखों को आकर्षित कर रही है। देवदत्त का विरोध, केवल उसमें उन्नति दे सकेगा।"

जीवक—"देव! फिर भी जो ईर्षा की पट्टी आँखों पर चढ़ाते

हैं वे इस नहीं ग्रस्य सकते। अस्तु अब मुझे क्या आज्ञा है क्योंकि यह जीवन अब आपही की सेवा के लिये उत्सर्ग है।"

वासवी—"जीवक, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी सद्बुद्धि तुम्हारी चिरसंगिनी रहे। महाराज को अब स्वतन्त्र वृत्ति की आवश्यकता है। अतः काशी प्रान्त का राजस्व जो हमारा प्राप्य है उसे लाने का उद्योग करना होगा। मगध साम्राज्य से हम लोग किसी प्रकार का सम्बन्ध न रक्खेंगे।"

जीवक—"देवी! इसके पहिले कि हम और कोई कार्य्य करें हमारा कौशाम्बी जाना एक बार आवश्यक है।"

बिम्बसार—"नहीं जीवक! मुझे किसी की सहायता की आवश्यता नहीं, अब यह राष्ट्रीय झगड़ा मुझे रुचता नहीं। उसकी चाह भी नहीं।"

वासवी—"तब भी आपको भिक्षावृत्ति नहीं करनी होगी। अभी हम लोगों में वह त्याग मानापमान रहित अपूर्व स्थिति नहीं आ सकेगी। फिर, जो शत्रु से भी अधिक घृणित व्यवहार करना चाहता हो, उसकी भिक्षा वृत्ति पर अवलम्बन करने को हृदय नहीं कह सकता।"

जीवक—"कोशल तो सुदत्त जा चुके हैं और कौशाम्बी में भी यह समाचार पहुँचना आवश्यक है। इसी लिये मैं कहता था और कोई बात नहीं। काशी के दण्डनायक से भी मिल कर जाऊँगा, उसकी कैसी स्थिति है इसे भी देख लूँगा।"

बिम्बसार—"जैसी तुम लोगों की इच्छा।"

वासवी—"नाथ! मैं आपसे छिपाती थी, फिर भी कहना ही पड़ा कि हम लोग वानप्रस्थ आश्रम में भी स्वतन्त्र नहीं रख गये हैं?"

बिम्बसार—(निश्वास लेकर)"ऐसा!—तो कुछ हो—"

(गाते हुए भिक्षुकों का प्रवेश)

न धरो कह कर इसको 'अपना'।
यह दो दिन का है सपना॥ न धरो

वैभव का बरसाती नाला, मरा पहाड़ी झरना।
यहां पहाड़ो नहीं और को जिसम पड़े कलपना॥ न धरो॥

दुखियों का कुछ आँसू पोछ ला, पड़े न आहें भरना
त्याग आडम्बर हो उदार, बस, एक उसी को जपना॥ न धरो॥

बिम्बसार—"देवी, इन्हें कुछ दो!—

वासवी—"और तो कुछ नहीं है—(कङ्कण उतार कर देती है) प्रभु! इन सोने और जवाहिरों ही का आँखों पर बड़ा रङ्ग रहता है जिससे मनुष्य अपना अस्थि चर्म का शरीर तक नहीं देखने पाता—

(भिखारी जाते हैं)

पटाक्षेप।

दृश्य पाँचवाँ

(कौशाम्बी में मागन्धी का मन्दिर)

मागन्धी—(स्वगत)"इस रूप का इतना अपमान ! सो भी एक दरिद्र भिक्षु के हाथ ! मुझसे ब्याह करना अस्वीकार किया ! यहाँ मैं राजरानी हुई, फिर भी वह ज्वाला न गई, यहाँ रूप का गौरव हुआ तो धन के अभाव से दरिद्र कन्या होने से अपमान की यन्त्रणा में पिस रही हूँ। अच्छा इसका भी प्रतिशोध लूँगी, अब यही मेरा मत हुआ। उदयन राजा है तो मैं भी अपने हृदय की रानी हूँ दिखला दूँगी कि स्त्रियाँ क्या कर सकती हैं। कौन है ?"

(एक दासी का प्रवेश)

दासी—"महादेवी ! क्या आज्ञा है ?"

मागन्धी—"तू ही न गई थी गौतम का समाचार लाने, वह आज कल पद्मावती के मन्दिर में भिक्षा करने आता है न ?"

दासी—"आता है स्वामिनी। वह तो पटों महल में बैठ कर उपदेश करता है। महाराज भी वहीं बैठ कर उसकी वक्तृता सुनते हैं। बड़ा आदर करते हैं।"

मागन्धी—"तभी कई दिनों से इधर नहीं आते हैं। अच्छा नर्तकियों को तो बुला ला। नवीना को भी कह दे कि वह शीघ्र आवे। और आसव लेती आव।" (दासी का प्रस्थान)

मागन्धी—(आपही आप) "गौतम! यह तुम्हारी तितिक्षा तुम्हें कहाँ ले जायगी? यह तुमने कभी न विचारा कि सुन्दरी स्त्रियाँ भी संसार में कुछ अपना अस्तित्व रखती हैं। अच्छा देखूँ तो कौन खड़ा रहता है।"

(नवीना का पान पात्र लेकर प्रवेश)

नवीना—"महादेवी की जय हो।"

मागन्धी—"तुम्हें भी बुलाना होगा क्यों? महाराज नहीं आते हैं तो तुम सब महारानी हो गई हो न?"

नवीना—"दासी को आज्ञा मिलनी चाहिए। यह तो प्रति क्षण श्री चरणों में रहती है।"

(पान लगाती है)

मागन्धी—"महाराज आज आवेंगे कि नहीं, इसका पता लगा कर शीघ्र आवो—

(नवीना जाती है)

मागन्धी—(आपही आप गाती है)

> भली न क्यों भला अवहेला की।
> सम्यक कली मिला सौरभ से उपा मनोहर बेला की॥

नवीना—(प्रवेश करके) "महाराज आया ही चाहते हैं।"

मागन्धी—"अच्छा। आज मुझे बड़ा काम करना है नवीना! नर्तकियां को शीघ्र बुला—मेरी वेशभूषा भी ठीक है न—देख तो—"

नवीना—"वाह स्वामिनी, तुम्हें वेशभूषा की क्या आवश्यकता है—

"मनोहर पीन कुंचपर स सरस भी जाय जो अचल ।
पढ़ाता यह नई सुलना बनाता चित्त को चञ्चल ॥
सुला हों एक दो लट जो कपालों पर कहीं काली ।
वहीं फाँसी लटकती प्रेमियों को बाँधन वाली ॥

मागन्धी—(हँसकर) "अच्छा अच्छा रहने दे और सब उप क्रम ठीक रहे, समझी। कोई वस्तु अस्त व्यस्त न रहे। अप्रसन्नता की कोई बात न होने पावे ? उस दिन जो कहा है वह भी ठीक रहे।"

नवीना—"यह भी आपके कहने पर है। मैं सब अभी ठीक किये देती हूँ।" (जाती है)

(एक ओर से उदयन का प्रवेश, दूसरी ओर से नर्तकियों का प्रवेश। सब नाचती हैं और मागन्धी उदयन का हाथ पकड़ कर बढ़ाती है।)

(नर्तकियों का गान)

प्यार निर्मोही होकर मत हमको भूलना रे।
प्याला प्रेम समेत पिलाया मरे हुए को आप जिलाया ॥
गले लगाया, पेंग बढ़ाया, झूलना रे-॥ प्यार० ॥
बरसा सदा दयाजल शीतल सिंचा हमारा हृदय मरुस्थल
भरे कटीले फूल, इसीमें फूलना रे।
प्यार निर्मोही होकर मत हमको भूलना रे ॥प्या०॥

(नर्तकी जाती है)

मागन्धी—"आर्यपुत्र ! क्या कई दिनों तक मेरा ध्यान भी न आया ? क्या मुझ से कोई अपराध हुआ था ?"

उदयन—"नहीं प्रिये । मगध से एक गौतम नाम के बड़े भारी महात्मा आये हैं, जो अपने को "बुद्ध"—कहते हैं । देवी पद्मावती के मन्दिर मे उनका संघ निमन्त्रित होता था और वे उपदेश देते थे । महादेवी वासवदत्ता भी वहीं नित्य आती थीं ।"

मागन्धी—(बात काट कर) "तब फिर मुझे क्यों पूछा जाय—"

उदयन—(आदर से) "नहीं नहीं, यह तो तुम्हारी ही भूल थी । बुलवाने पर भी नहीं आई । वाह ! सुनने के योग्य उपदेश होता था । अभी तो और भी होगा । हमने अनुरोध किया है कि व कुछ दिनों तक ठहर कर कौशाम्बी में धर्म का प्रचार करें ।"

मागन्धी—"आप पृथ्वीनाथ हैं सब कुछ आपको सोहता है, किन्तु मैं तो अच्छी आँखों से इस गौतम को नहीं देखती । और यह सब मगध के राजमन्दिर में ही मुड़ियों का स्वाँग अच्छा है, कौशाम्बी इस पाखंड से बची रहे तो बड़ा उत्तम हो । स्त्रियों के मन्दिर में उपदेश क्यों हो । क्या उन्हे पातिव्रत छोड़कर किसी और भी धर्म की आवश्यकता है ?

(वाक्पात्र बढ़ाती है)

उदयन—"ठहरो मागन्धी ! पुरुष का हृदय बड़ा मशक होता है क्या तुम इसे नहीं जानतीं ? क्या अभी ? तुमने कुछ विपात त्याग नहीं किया है ? यह मदिरा अब मैं नहीं पीऊँगा । अभी आज ही भगवान का इसी पर उपदेश हुआ है, पर मैं देखता हूँ कि मदिरा के पहिले तुम ने हलाहल मेरे हृदय में उड़ेल दिया ।

यह व्यङ्ग सूखे ग्राम की तरह नीचे भी नहीं उतरता है और बाहर भी नहीं हो पाता है।"

मागन्धी—"क्षमा कीजिये नाथ! मैं प्रार्थना करती हूँ, अपने हृदय को इस हाला में शुद्ध तृप्त कीजिये। क्रोध की उत्तेजना एक सपत्नी के वाक्य पर न कीजिये। अपराध क्षमा हो सम्राट्! मैं दरिद्र-कन्या हूँ। मुझे आपके पानपर और किसी की अभिलाषा नहीं है। वे आपको पा चुकी हैं, अब उन्हें और कुछ की ललक्ती आकांक्षा है, चाहे उसे लोग धर्म ही क्यों न कहें। मुझे इतनी सामर्थ भी नहीं, आवश्यकता भी नहीं, मुझे तो यही चरण ही पर्य्याप्त है।"

(पैर पकड़ती है)

उदयन—"हूँ, अच्छा देखा जायगा। (मुग्ध होकर) उठो मागन्धी उठो। मुझे अपने हाथों से अपना प्रेम स्वरूप पात्र शीघ्र पिलाओ, फिर कोई बात होगी।"

(मागन्धी मदिरा पिलाती है)

उदयन—(प्रेमोन्मत्त होकर) "लो मागन्धी, कुछ गाओ। अब मुझे अपने मुखचन्द्र को निर्निमेष देखने दो कि मैं एक अतीन्द्रिय जगत की नक्षत्र मालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले शरच्चन्द्र की कल्पना करता हुआ भावना की सीमा को लाँघ जाऊँ, और तुम्हारा सुरभि निश्वास मेरी कल्पना को आलिङ्गन करने लगे।"

मागन्धी—"यही तो मैं भी चाहती हूँ कि मेरी मूर्छना में मेरे प्राणनाथ की विश्वमोहिनी वीणा सहकारिणी हो। हृदय और

तन्त्री एक होकर बज उठे। विश्वभर जिसके मर्म पर सिर हिला दे, और पागल हो जाय।"

उदयन—"हाँ मागन्धी! वह रूप तुम्हारा बड़ा प्रभावशाली था, जिसने उदयन को तुम्हारे चरणों में लुटा दिया (मद्यप की सी चेष्टा करता है) किसी दासी को भेजो कि पद्मावती के मन्दिर में से"

मागन्धी—"आर्यपुत्र की हस्तिस्कन्ध वीणा ले आवे।"

(दासी जाती है)

उदयन—"तब तक तुम कुछ सुनाओ।

(मागन्धी पान कराती है। और गाती है)

आओ हिये में मेरे प्रान प्यारे।
नैन भये निर्मोही नहीं, अब देखे बिना रहत हैं तुम्हारे।
सबको छोड़ तुम्हें पाया है देखूँ कि तुम होते हो हमारे॥
तपन बुझे तन की औ' मन की हों हम तुम पल एक न न्यारे।
आओ हिये में मेरे प्रान प्यारे॥

उदयन—"हृदयेश्वरी! कौन हमको तुमको अलग कर सकता है।

हमारे प्रेम में बनकर हृदय, यह मूर्ति भायगी।
स्वयं निज माधुरी छवि का रसीला राग गायगी॥
अलग तब चेतना ही चित्त में कुछ रह न आयगी।
अकेले विश्व मन्दिर में तुम्हीं को पूज्य पायगी॥

मागन्धी—"प्रियतम ! मैं दासी हूँ।"

उदयन—"नहीं, तुम आज से मेरी स्वामिनी बनो।"

(दासी वीणा लेकर आती है और उदयन के सामने रखती है। उदयन के उठाने के साथ ही साँप का बच्चा निकल पड़ता है। मागन्धी चिल्ला उठती है।)

मागन्धी—"पद्मावती ! तूं यहाँ तक आगे बढ़ चुकी है। जो मेरी शंका थी वह प्रत्यक्ष हुई।"

उदयन—(क्रोध में उठ कर खड़ा हो जाता है) "अभी इसका प्रतिशोध लूँगा, ओह् ऐसा पाखण्ड आचरण ! असह्य !"

मागन्धी—"क्षमा हो सम्राट् ! आपके हाथ में न्यायदण्ड है। केवल प्रतिहिंसा से कोई कर्तव्य आपका निर्धारित न होना चाहिये, सहसा भी नहीं। प्रार्थना है कि आज आप विश्राम करें, कल विचार कर कोई काम कीजियेगा।"

उदयन—"नहीं। किन्तु फिर भी तुम कह रही हो, अच्छा मैं विश्राम चाहता हूँ।"

मागन्धी—"यहाँ"

(उदयन लेटता है। मागन्धी पैर दबाती है)

पट-परिवर्तन।



दृश्य छठवाँ

(कौशाम्बी के पथ में जीवक)

जीवक—(आपही आप) "राजकुमारी से भेंट भी हुई और गौतम के दर्शन भी हुए, किन्तु मैं तो चकित हो गया हूँ कि मैं क्या करूँ। वासवी देवी और उनकी कन्या पद्मावती, दोनों की एकही तरह की अवस्था है। जिसे अपना सम्हालना ही दुष्कर है, वह वासवी की क्या कर सकेगी। सुना है कि कई दिन से पद्मावती के मन्दिर में उदयन जाते ही नहीं और आचार व्यवहार से कुछ असन्तुष्ट से दिखलाई पड़ते हैं। क्योंकि उन्हीं के परिजन होने के कारण मुझ से भी अच्छी तरह न बोले और महाराज बिम्बसार की कथा सुन कर भी कोई मत नहीं प्रकट किया। दासी आने को थी, पर भी नहीं आई। क्या करें, वहाँ जाकर बैठें कि कोशल ही जायँ—

(दासी का प्रवेश)

दासी—"नमस्कार! महादेवी ने कहा है कि आर्य्य जीवक से कहो कि मेरी चिन्ता न करें। माता जी की देख रेख उन्हीं पर है, अतः वे शीघ्र ही मगध पलट जावें। हमारे देवता जब प्रसन्न होंगे तो उनसे अनुरोध करके कोई उपाय निकालूँगी और पिता जी के श्री चरणों का भी दर्शन करूँगी। इस समय तो उनका चले जाना ही श्रेयस्कर है। महाराज की विरक्ति से मैं उनसे भी

विशेष मिलना नहीं चाहती हूँ। सम्भव है कि उन्हें किसी षड़यन्त्र की आशंका हो, क्योंकि नई रानी ने मेरे विरुद्ध कान भर दिये हैं। इस लिये मुझे अपनी कन्या समझ कर क्षमा करेंगे। मैं इस समय बड़ी दुखी हूँ कर्तव्य निर्धारण नहीं कर सकती हूँ।"

जीवक—"राजकुमारी से कहना कि मैं उनकी कल्याण-कामना करता हूँ। आशीर्वाद करता हूँ कि वे अपने पूर्व गौरव को लाभ कर। और मगध की कोई चिन्ता न करें। मैं केवल संदेश कहने यहाँ चला आया था। अभी मुझे शीघ्र कोशल जाना होगा। वहाँ जाकर अब मैं सब कार्य्य ठीक कर लूँगा।"

दासी—"बहुत अच्छा।" —(नमस्कार करके जाती है)

(गौतम का संघ के साथ प्रवेश)

जीवक—"महाश्रमण के चरणों में अभिवादन करता हूँ।"

गौतम—"शान्ति मिले, धर्म में श्रद्धा हो। जीवक, तुम अच्छे तो हो? कहो मगध के क्या समाचार हैं? मगध नरेश सकुशल तो हैं?"

जीवक—"तथागत! आप से क्या छिपा है। फिर भी मैं कह देना चाहता हूँ कि मगध-राजकुल में बड़ी अशान्ति है। वानप्रस्थ आश्रम में भी महाराज बिम्बसार को शान्ति नहीं है।"

गौतम—"जीवक!—

चञ्चल चन्द्र, सूर्य्य है चञ्चल,
चपल सभी ग्रह तारा है।

चञ्चल अनिल, अनल, जल, थल सब,
चञ्चल जैसे पारा है ॥
जगत प्रगति से अपने चञ्चल
मन की चञ्चल लीला है ।
प्रति क्षण प्रकृति चञ्चला जैसी
यह परिवर्तनशाला है ॥
अणु परमाणु दुःख सुख चञ्चल,
क्षणिक सभी सुख साधन है ।
दृश्य सकल नश्वर परिणामी,
किसको दुख किसका धन है ॥
क्षणिक सुखों का स्थायी कहना,
दुःख मूल यह भूल महा ।
चञ्चल मानव क्यों भूला तू,
इस साँठी में सार कहाँ ॥

जीवक—"प्रभु ! कृतार्थ हुआ । दर्शन से नेत्र धन्य हुए ।"

गौतम—"कल्याण हो । सत्य की रक्षा करने से, वही सुरक्षित कर लेता है । जीवक ! निर्भय होकर पवित्र कर्तव्य करो ।"

(गौतम जाते हैं)

(विदूषक वसन्तक का प्रवेश)

वसन्तक—"महा वैद्यराज ! नमस्कार । बस एक रेचक और थोड़ा सा वस्तिकर्म—इसके बाद गर्मी ठंडी... आप...

नमस्कार का भी अवसर देने के लिये मुझ को व्याकुल न कीजिये। पहले रेचक प्रदान कीजिये। निदान में समय नष्ट न कीजिये।"

जीवक—(स्वगत) "यह विदूषक इस समय कहाँ से आगया। भगवान, किसी तरह यह हटे।"

वसन्तक—"क्या आप निदान कर रहे हैं? अजी अजीर्ण है अजीर्ण। पाचन देना हो दो, नहीं तो हम अच्छी तरह जानते हैं कि वैद्य लोग अपने मतलब से रेचन तो अवश्य ही देंगे। अच्छा हाँ, कहो तो बुद्धि के अजीर्ण में तो रेचन ही न गुणकारी होगा? सुनो जी, मिथ्या आहार से पेट का अजीर्ण होता है और मिथ्या विहार से बुद्धि का। किन्तु, महर्षि अग्निवेश ने कहा है कि इसमें रेचन ही गुणकारी होता है।"

(हँसता है)

जीवक—"तुम दूसरे की तो कुछ सुनोगेही, नहीं?"

वसन्तक—"सुना है कि धन्वन्तरि के पास एक ऐसी पुड़िया थी कि बुढ़िया युवती हो जाय और दरिद्रता का केंचुल छोड़कर मणिमयी धनवती हो जाय। क्या तुम्हारे पास भी—ऊँ—नहीं है। तुम क्या जानो।"

जीवक—"तुम्हारा तात्पर्य क्या है? हम कुछ नहीं समझ सके।"

वसन्तक—"केवल खल बट्टा चलाते रहें। और मूर्खता का पुट पाक करते रहें। महाराज ने एक नई दरिद्र कन्या से ब्याह

कर लिया है, उसके साथ मिथ्याविहार करते ? उन्हें बुद्धि का अजीर्ण हो गया है। महादेवी वासवदत्ता और पद्मावती जीर्ण हो गई हैं, तब कैसे मेल हो ? क्या तुम उन्हें अपनी औषधि से, उस विवाह करने के समय की अवस्था का नहीं बना सकते, जिससे महाराज इस अजीर्ण से बच जायँ।"

जीवक—"तुम्हारे से चाटुकार और भी चाट लगा देंगे, दो चार और जुटा देंगे।"

वसन्तक—"उसमें तो गुरुजनों का ही अनुकरण है। श्वसुर ने दो ब्याह किये, तो दामाद ने तीन। कुछ उन्नति ही रही।"

जीवक—"दोनों अपने कर्म के फल भोग रहे हैं। कहो कोई यथार्थ बात भी कहने सुनने की है या यही हँसोड़पन ?"

वसन्तक—"घबराइये मत। बड़ी रानी वासवदत्ता पद्मावती को सहोदरा भगिनी की तरह प्यार करती हैं। उनका कोई अनिष्ट नहीं होने पावेगा। उन्होंने ही मुझे भेजा है, और प्रार्थना की है कि "आर्य्यपुत्र" की अवस्था आप देख रहे हैं, उनके व्यवहार पर ध्यान न दीजियेगा। पद्मावती मेरी सहोदरा है, उसकी ओर से आप निश्चिन्त रहें। क्या करें वे लाचार हैं नहीं तो आपकी दो चार रेचकी गोली राजा को खिला देतीं। फिर तो झट उनकी गर्मी शान्त हो जाती। अच्छा आप हताश न हूजियेगा। कोशल से समाचार भेजियेगा। नमस्कार।"

(जिसका हुआ जाता है)

जीवक—"अच्छा, अब हम भी कोशल जायें।"

(जाता है)

दृश्य सातवाँ

स्थान—कोशल में श्रावस्ती का दरबार।

(प्रसेनजित सिंहासन पर और अमात्य अनुचरादि यथास्थान बैठे हैं)

प्रसेनजित—"क्या यह सब सच है? सुदत्त, तुमने आज मुझे एक बड़ी आश्चर्यजनक बात सुनाई है। क्या सचमुच अजातशत्रु ने अपने पिता को सिंहासन से उतार कर उसका तिरस्कार किया है?"

सुदत्त—"पृथ्वीनाथ! यह उतना ही सत्य है जितना कि श्रीमान् का इस समय सिंहासन पर विराजना सत्य है। मगध-नरेश से एक षड्यन्त्र द्वारा सिंहासन छीन लिया गया है?"

विरुद्धक—"हमने तो सुना है कि महाराज बिम्बसार ने वान-प्रस्थ आश्रम स्वीकार किया है और इस अवस्था में युवराज का राज्य सँभालना अच्छा ही है।"

प्रसेनजित—"विरुद्धक! क्या अजात की ऐसी परिपक्व अवस्था है, कि मगधनरेश उसे साम्राज्य का बोझ उठाने की आज्ञा दें?"

विरुद्धक—"पिताजी! यदि क्षमा हो तो मैं यह कहने में संकोच न करूँगा कि युवराज को राज्यसञ्चालन की शिक्षा देना महाराज का कर्त्तव्य है।"

प्रसेनजित—(उत्तेजित होकर) "और आज तुम दूसरे शब्दों में उस शिक्षा को पाने का उद्योग कर रहे हो। क्या राज्याधिकार ऐसी प्रलोभन की वस्तु है कि कर्त्तव्य और पितृभक्ति एकबार ही भुला दी जाय?"

विरुद्धक—" पुत्र यदि पिता से अपना अधिकार माँगे तो उसमें दोष ही क्या है?"

प्रसेनजित—(और भी उत्तेजित होकर) "तब तू अवश्य नीच रक्त का मिश्रण है। उस दिन, जब तेरे नानिहाल में तेरे अपमानित होने की बात मैंने सुनी थी, तब मुझे विश्वास नहीं हुआ था, अब मुझे विश्वास हो गया कि शाक्यों के कथनानुसार तेरी माता अवश्य ही दासीपुत्री है। और तू एक कलुषित और हेय सन्तान है। नहीं तो तू इस पवित्र कोशल की विश्वविश्रुत गाथा पर पानी फेर कर अपने पिता के साथ उत्तर और प्रत्युत्तर न करता। क्या इसी कोशल में रामचन्द्र और दशरथ के सदृश पुत्र और पिता अपना उदाहरण नहीं छोड़ गये हैं? क्या ऐसी कुराचारी भेड़ियों की तरह भयानक सन्तान अपने पिता माताओं का ही वध न करेगी?"

सुदत्त—"दयानिधे! बालक का अपराध मार्जनीय है।"

विरुद्धक—"चुप रहो सुवत्स! पिता कहेगा और पुत्र उसे सुनेगा। तुम चाटुकारिता करके मुझे अपमानित न करो।"

प्रसेन०—"अपमान! पिता से पुत्र का अपमान!! क्या यह विद्रोही युवक-हृदय जो नीच रक्त से कलुषित है युवराज होने के योग्य है। अमात्य!"

अमात्य—"आज्ञा पृथ्वीनाथ!"

प्रसेन०—"(स्वगत) अभी से इसका गर्व तोड़ देना चाहिये। (प्रकट) आज से यह निर्भीक किन्तु अशिष्ट बालक अपने युवराज पद से वञ्चित किया गया। और, इसकी माता की राजमहिषी का सा सम्मान नहीं होगा—केवल जीविका निर्वाह के लिये इसे राजकोश से व्यय मिला करेगा।"

विरुद्धक—"महाराज! मैं न्याय चाहता हूँ।"

प्रसेन०—"अमोघ! तू पिता से न्याय चाहता है! यदि पक्ष निर्मल है और पुत्र अपराधी है तो किस पिता ने पुत्र के लिये न्याय किया है! तेरा बड़प्पन और महत्वाकांक्षा से पूर्ण हृदय अच्छी तरह कुचल दिया जायगा—बस, चला जा।"

(विरुद्धक सिर झुका कर जाता है)

अमात्य—"यदि अपराध क्षमा हो तो कुछ प्रार्थना करूँ। यह न्याय नहीं है। कोशल के राजदण्ड ने कभी ऐसी व्यवस्था नहीं दी। किसी दूसरे के पुत्र का कलङ्कित कर्म्म सुन कर श्रीमान् उत्तेजित

होकर अपने पुत्र को दण्ड दें, यह तो श्रीमान् ! की प्रत्यक्ष निर्बलता है। क्या श्रीमान् उसे उचित शासक नहीं बनाना चाहते ?"

प्रसेन०—"चुप रहो मंत्री ! जो कहता हूँ उसे करो।"

(दौवारिक आता है)

दौवारिक०—"महाराज की जय हो। मगध से जीवक आये हैं।"

प्रसेन०—"जाओ लिवा लाओ।"

(दौवारिक जाता है और जीवक को लिवा लाता है)

जीवक—"जय हो ! कोशलनरेश की।"

प्रसेन०—"कुशल तो है जीवक ! तुम्हारे महाराज की तो सब बातें हम सुन चुके हैं, उन्हें दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं, हाँ, कोई नया समाचार हो तो कहो।"

जीवक—"दयालु-देव ! कोई नया समाचार नहीं है। केवल अपमान की यन्त्रणा ही महादेवी वासवी को दुखित कर सकती है। और कुछ नहीं।"

प्रसेन०—"तुम लोगों ने तो राजकुमार को अच्छी शिक्षा दी ! अस्तु, देवी वासवी को अपमान भोगने की आवश्यकता नहीं। उन्हें अपने सपत्नीपुत्र के भिक्षान्न पर जीवन निर्वाह नहीं करना होगा। मंत्री ! काशी की प्रजा के नाम एक पत्र लिखो कि वह अजात को राजकर न देकर वासवी को अपना कर प्रदान करे। क्योंकि उसे मैंने वासवी को दिया है; सपत्नी पुत्र का उस पर कोई अधिकार नहीं है।"

जीवक—"महाराज! देवी वासवी ने कुशल पूछा है और कहा है कि इस अवस्था में मैं आर्य्यपुत्र को छोड़ कर नहीं आ सकती, इस लिये आप कुछ अन्यथा न समझेंगे।"

प्रसेन०—"जीवक! यह तुम क्या कहते हो। कोशलकुमारी दशरथनन्दिनी शान्ता का उदाहरण उसके समक्ष है। दरिद्र ऋषि के साथ वह दिव्य जीवन व्यतीत कर सकती थी। क्या वासवी किसी दूसरे कोशल की राजकुमारी है? कुलशील पालन यही तो आर्य्यललनाओं का परमोज्वल रत्न है। स्त्रियों का यही मुख्य धन है। अच्छा! जाओ विश्राम करो।"

(जीवक का प्रस्थान)

(सेनापति बन्धुल का प्रवेश)

बन्धुल—"प्रबलप्रताप कोशलनरेश की जय हो।"

प्रसेन०—"स्वागत! सेनापते! तुम्हारे मुख से "जय" शब्द कितना सुहावना सुनाई पड़ता है। कहो क्या समाचार है?"

बन्धुल—"सम्राट्, कोशल की विजयिनी पताका वीरों के रक्त में अपने अरुणोदय का तीव्र तेज दौड़ाती है और शत्रुओं को उसी रक्त में नहाने की सूचना देती है। सम्राट्! क्या क्षुद्र विद्रोही लुटेरे न्याय के तेज में भस्म न होंगे। राजाधिराज! हिमालय का सीमाप्रान्त बर्बर लिच्छिवियों के रक्त से और भी ठण्डा कर दिया गया है। कोशल के भयप्रद नाम से ही शान्ति स्वयं पहरा दे रही है। यह सब श्रीचरणों का प्रताप है। अब विद्रोह का

नाम भी नहीं है। विदेशी बर्बर शताब्दियों तक उधर देखने का भी साहस न करेंगे।"

प्रसेन०—"धन्य है विजयीवीर! कोशल तुम्हारे ऊपर गर्व करता है और आशीर्वादपूर्ण अभिनन्दन करता है। लो यह विजय का स्मरण चिन्ह।" (हार पहिनाता है)

सब—"जय सेनापति बन्धुल की जय।"

प्रसेन०—(चौंकते हुए) "हैं!—जाओ विश्राम करो।"

(बन्धुल जाता है)

दृश्य आठवाँ

स्थान—प्रकोष्ठ।

(कुमार विरुद्धक एकाकी बैठे हैं।)

विरुद्धक—(आप ही आप) "घोर अपमान! अनादर की पराकाष्ठा और तिरस्कार का भैरवनाद!! यह क्या सहनीय है? धिक्कारपूर्ण कोशल देश की सीमा कभी की मेरी आँखों से दूर हो जाती। किन्तु, मेरे जीवन का विकाशसूत्र एक बड़े कोमल कुसुम के साथ बँध गया है। हृदय नीरव अभिलाषाओं का नीड़ हो रहा है।

"आ ग ! वह मनात का मनोहर स्वप्न विश्वभर की मदिरा होकर मेरे उन्माद की सहकारिणी कोमल कल्पनाओं का भण्डार हो गया। मल्लिका! तुझे मैंने अपने यौवन के पहिले ग्रीष्म की अर्द्ध रात्रि में आलोकपूर्ण नक्षत्रलोक से तरल हीरा के फूल (के रूप) में आते देखा। विश्व के असंख्य कोमल कण्ठ की रसीली तानें तेरा अभिनन्दन करते, तुझे सम्हाल कर उतारने के लिये नक्षत्रलोक को गई थीं। शिशिर कणों से सिक्त पवन तेरे उतरने की सीढ़ी बना था, तू धीरे धीरे उसी के सहारे उतरी—उषा ने तेरा स्वागत किया—चाटुकार मलयानिल तेरे परिमल की इच्छा से परिचारक बन गया, और बरजोरी मल्लिका के एक कोमल वृन्त का आसन देकर तेरी सेवा करने लगा। उसने खेलते खेलते तुझे उस आसन से भी उठाया और गिराया। तू चरणों पर आ ही गई। जटिल जगत की कठिन पृथ्वी पर तू कुटिल गृहस्थी के आलवाल में आश्चर्यपूर्ण सौन्दर्य लेकर खड़ी हो गई। यह कैसा इन्द्रजाल था—प्रभात का यह मनोहर स्वप्न था—सेनापति बन्धुल एक हृदयहीन क्रूर सैनिक ने तुझे अपनी उच्छृंखलता का फूल बनाया। और हम तुझे अपने घेरे में रखने के लिये कँटीली झाड़ी बन कर पड़े ही रहे। कोशल के आज भी हम कलंक स्वरूप हैं ~ ~ ~ " (कोशल की रानी का प्रवेश)

रानी—"छि राजकुमार! इसी दुर्बल हृदय से तुम संसार में कुछ कर सकोगे। स्त्रियों की सी रोदनशीला प्रकृति लेकर तुम कोशल के सम्राट बनोगे?"

विरुद्धक—"माँ क्या कहती हो। हम आज एक तिरस्कृत युवक मात्र हैं। कहाँ का कोशल और कौन राजकुमार!"

रानी—"देखो, तुम मेरी सन्तान होकर मेरे सामने ऐसी पोच बातें न कहो। दासी की पुत्री होकर भी मैं राजरानी बनी और हठ से मैंने इस पद को ग्रहण किया, और तुम राजा के पुत्र होकर इतने निस्तेज और डरपोक होगे यह कभी मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। बालक! मानव अपनी इच्छाशक्ति से और पौरुष से ही कुछ होता है। जन्मसिद्ध तो कोई भी अधिकार, दूसरों के समर्थन का सहारा चाहते हैं। विश्वभर में छोटे से बड़े होना यही प्रत्यक्ष नियम है, तुम इसकी क्यों अवहेला करते हो। महत्त्वाकांक्षा के प्रदीप्त अग्निकुण्ड में कूदने को प्रस्तुत हो जाओ, विरोधी शक्तियों को दमन करने के लिये कालस्वरूप हो जाओ। साहस के साथ उनका सामना करो, फिर या तो तुम गिरोगे या वे ही भाग जाँयगी। मक्षिका तो क्या राजलक्ष्मी तुम्हारे पैरों पर लोटेगी। पौरुष करो। इस पृथ्वी पर जियो तो कुछ होकर जियो, नहीं तो मेरे दूध का अपमान कराने को तुम्हें अधिकार नहीं।"

विरुद्धक—"बस माँ, अब कुछ न कहो। आज से प्रतिशोध लेना हमारा कर्त्तव्य होगा, और यही जीवन का लक्ष्य होगा। माँ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे अपमान के मूल कारण इन शाक्यों का एक बार अवश्य संहार करूँगा और उनके रक्त में नहा कर इस कोशल के सिंहासन पर बैठ कर तेरी वन्दना करूँगा।

तुम्हारी शपथ माँ। आशीर्वाद दो कि हम इस कठ परीक्षा में उत्तीर्ण हों।"

रानी—(सिर पर हाथ फेर कर) "मेरे बच्चे ऐसा ही हो।"

(दोनों जाते हैं)





दृश्य नववां

पद्मावती का प्रकोष्ठ।

पद्मावती—(आप ही आप) "यह सौभाग्य ही है कि भगवान् गौतम आ गये हैं; अन्यथा पिता की दुरवस्था सोचते सोचते तो मेरी बुरी हालत होगई थी। महाश्रमण की अमोघ सान्त्वना मुझे धैर्य देती है। किन्तु मैं यह क्या सुन रही हूँ? स्वामी मुझसे असन्तुष्ट हैं। भला यह वेदना मुझसे कैसे सही जायगी। कई बार दासी गई किन्तु यहाँ तो तेवर ही ऐसे हैं कि किसी को प्रार्थना, अनुनय और विनय करने का साहस ही नहीं होता। फिर भी कोई चिन्ता नहीं, राजभक्त प्रजा को विद्रोही होने का भय ही क्यों हो?

हमारा प्रेम, बन्धन क्या, सरल है,

बँधा है भावना निधि सा तरल है।

देवदत्त—(बैठता हुआ) "आवश्यकता कैसी राजन्! आपको कमी क्या है, और हम लोगों के पास आशीर्वाद के अतिरिक्त और क्या धरा है ? फिर भी सुनूँ—"

अजात०—"कोशल को दास बना रहे हैं। वह काशी की प्रजा में विद्रोह कराना चाहता है। वहाँ के लोग राजस्व देना अस्वीकार करते हैं।"

देवदत्त—"पाखण्ड गौतम आजकल उसी ओर घूम रहा है इसी लिये। कोई चिन्ता नहीं, वत्स अजात! गौतम की कोई चाल नहीं लगेगी। यदि मुनिव्रत धारण करके भी वह ऐसे साम्राज्य के षड्यन्त्रों में लिप्त है तो मैं भी हठवश उसका प्रतिद्वन्द्वी बनूँगा। परिषद को आह्वान करो—"

अजात०— जैसी आज्ञा—(दौवारिक से) जाओजी, परिषद के सभ्यों को बुला लाओ।"

(दौवारिक जाता है, फिर प्रवेश)

दौवारिक—"सम्राट् की जय हो। कोशल से कोई गुप्त अनुचर आया है, और दर्शन की इच्छा प्रकट करता है।"

देवदत्त—"उसे लिवा लाओ।

(दौवारिक जाकर लिवा लाता है)

दूत—"मगध सम्राट् की जय हो! कुमार विरुद्धक ने यह पत्र श्रीमान् की सेवा में भेजा है।" (पत्र देता है)

(अजातशत्रु पत्र पढ़कर देवदत्त को दे देते हैं)

देवदत्त—(पढ़कर) "आह! कैसा सुयोग है। हम लोग क्यों

न सहमत होंगे। दूत, तुम्हें शीघ्र पुरस्कार और पत्र मिलेगा—जाओ विश्राम करो।" (दूत जाता है)

अजात०—"गुरुदेव! यही अनुकूल घटना है! मगध जैसा परिवर्तन कर चुका है, वही तो कोशल भी चाहता है। हम नहीं समझते कि इन बुड्ढों को क्या पड़ी है और इन्हें सिंहासन का कितना लोभ है। क्या नवीन उद्योग को, यह पुरानी और नियन्त्रण में पड़ी हुई, संस्कार के कीचड़ में निमज्जित राजतन्त्र की पद्धति, असफल करेगी। तिल भर भी जो अपने पुराने विचारों से हटना नहीं चाहता, उसे अवश्य नष्ट हो जाना चाहिये, क्योंकि यह जगत ही गतिशील है।"

देवदत्त—"अधिकार! चाहे वे कैसे भी जर्जर और हलकी नींव के हों, अथवा अन्याय ही से क्यों न सगठित हों, सहज में नहीं छोड़े जा सकते। सज्जन, उसे विचार से काम में लाते हैं और हठी तथा दुराग्रही उसे तब तक परिवर्तन भी नहीं करना चाहते, जब तक वे एक बार ही नहीं हटा दिये जाँय—

दौवारिक—(प्रवेश करके) "जय हो देव! महामान्य परिषद् के सभ्यगण आए हैं।"

अजात०—"वे शीघ्र आवें।"

(दौवारिक जाकर लिवा लाता है)

परिषद्गण—"सम्राट् की जय हो। महात्मा को अभिवादन करता हूँ।"

देवदत्त—"राष्ट्र का कल्याण हो । राजा और परिषद की श्रीवृद्धि हो । बैठो ।"

परिषद०—"क्या आज्ञा है ।"

अजात०—आप लोग राष्ट्र के शुभचिन्तक हैं, जब पिता जी ने यह प्रकाण्ड बोझ मेरे सिर पर रखा, और मैंने इसे ग्रहण किया, तब इसे भी मैंने किशोर जीवन का एक कौतुक ही समझा था। किन्तु बात वैसी नहीं थी । माननीय महोदयो, राष्ट्र में एक ऐसी गुप्त शक्ति का कार्य्य खुले हाथों चल रहा है कि जो इस शक्तिशाली मगध-राष्ट्र को उन्नत नहीं देखा चाहता । और हमने केवल इस बोझ को आप लोगों की शुभेच्छा का सहारा पाकर लिया था । आप लोग बताइये कि उस शक्ति का दमन आप लोगों को अभीष्ट है कि नहीं । या अपने राष्ट्र और सम्राट को आप लोग हेय सिद्ध करना चाहते हैं ?"

परिषद—"कभी नहीं । मगध का राष्ट्र सदैव गर्व से उन्नत रहेगा, और विरोधी शक्ति पददलित होगी ।"

देवदत्त—"सभ्यो ! कुछ मैं भी कहना चाहता हूँ हमारा व्यक्तित्व भी आप लोगों का सहकारी हो सकता है और राष्ट्र का कल्याण करने में सहायता देने को प्रस्तुत है । इस समय जब कोशल का राष्ट्र अपने यौवन में पैर रख रहा है तब विद्रोह की आवश्यकता नहीं, राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को उसकी उन्नति सोचनी चाहिये । राजकुल के कौटुम्बिक झगड़ों से और राष्ट्र से कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं कि उनके पक्षपाती होकर हम अपने

देश की और जाति की दुर्दशा करावें। सम्राट् की विमाता बार बार विप्लव की सूचना दे रही है यद्यपि महामान्य सम्राट् बिम्बसार ने अपना सब अधिकार अपने सुयोग्य सन्तान को दे दिया है फिर भी ऐसी दुश्चेष्टा क्यों की जा रही है। काशी जो कि बहुत दिनों से मगध का एक सम्पन्न प्रान्त होरहा है वासवी देवीके षडयन्त्र से राजस्व देना अस्वीकार करता है। वह कहता है कि मैं कोशल का दिया हुआ वासवीदेवी का रक्षित धन हूँ। क्या ऐसे सुरम्य और धनी प्रदेश को मगध छोड़ देने के लिये प्रस्तुत है। क्या फिर इसी तरह और प्रदेश भी स्वतन्त्र होने की चेष्टा न करेंगे ? क्या इसी में राष्ट्र का कल्याण है ?"

सब—"कभी नहीं—कभी नहीं। ऐसा कदापि न होने पावेगा।"

अजात०—"तब आपलोग हमारा साथ देने के लिये पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं ? देश को अपमान से बचाना चाहते हैं ?"

सब—"अवश्य। राष्ट्र के कल्याण के लिये प्राण तक विसर्जन किया जा सकता है और हम सब ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।"

देवदत्त—"तथास्तु। क्या इसके लिये कोई नीति आपलोग निर्धारित करेंगे ?"

एक सभ्य—"हमारी सम्मति है कि आप ही इस परिषद के अधिष्ठाता बनें, और नवीन सम्राट् को अपनी स्वतन्त्र सम्मति देकर राष्ट्र का कल्याण करें, क्योंकि आप सदृश महात्मा सर्वलोक के हित की कामना रखते हैं। राष्ट्र का उद्धार करना भी भारी परोपकार है।"

अजात०—"यह हमें भी स्वीकार है।"

देवदत्त—"मेरी सम्मति है कि साम्राज्य का सैनिक अधिकार सम्राट् को लेकर सेनापति के रूप में कोशल के साथ विग्रह और उसे दमन करने को अग्रसर होना चाहिये। समुद्रदत्त गुप्त-प्रणिधि बनकर काशी जावें और प्रजा को मगध के अनुकूल बनावें, तथा शासन भार-परिषद् अपने सिर पर ले।"

दूसरा सभ्य—"यदि सम्राट् बिम्बसार इससे अपमान समझें?"

देवदत्त—"जिसने राज्य अपने हाथ से छोड़कर स्त्री की वश्यता स्वीकार कर ली। उसे इसका ध्यान भी नहीं हो सकता। फिर भी उनके समस्त व्यवहार वासवीदेवी की अनुमति से होंगे। और भी एक बात है वह मैं भूल गया था वह यह कि इस कार्य को उत्तम रूप से चलाने के लिये महादेवी छलना परिषद की देख रेख किया करें।"

समुद्रदत्त—"यदि आज्ञा हो तो मैं भी कुछ कहूँ।"

परिषद०—"हाँ, हाँ, अवश्य।"

समुद्रदत्त—"यह एक भी सफल नहीं होगा जब तक देवी वासवी का हाथ पैर चलता रहेगा। हमारी प्रार्थना है कि यदि आपलोग निश्चय के साथ राष्ट्र का कल्याण चाहते हैं तो पहिले इसका प्रबन्ध करें।"

देवदत्त—"तुम्हारा तात्पर्य्य क्या है।"

समुद्रदत्त—"यही कि वासवीदेवी को महाराज बिम्बसार से

अलग तो किया नहीं जा सकता–फिर भी बाध्य होकर उस उपवन की रक्षा पूर्णरूप से होनी चाहिये।"

तीसरा सभ्य—"क्या महाराज बन्दी बनाये जायँगे, मैं ऐसी परिषद् को नमस्कार करता हूँ। यह अनर्थ है। अन्याय है।"

देवदत्त—"ठहरिये! अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण कीजिये और विषय के गौरव को मत भुला दीजिये। समुद्रदत्त सम्राट बिम्बसार को बन्दी नहीं बनाना चाहता, किन्तु नियन्त्रण चाहता है। सो भी किसपर, केवल वासवीदेवी पर, जो कि मगध की गुप्त शत्रु हैं। और इसका कोई दूसरा सुगम उपाय नहीं। यह किसी पर प्रकट करके सम्राट् का निरादर न किया जाय। किन्तु युद्धकाल की राज मर्य्यादा कह कर अपना कार्य निकाला जाय। क्योंकि ऐसे समय में राजकुल की विशेष रक्षा होनी चाहिये।"

तीसरा सभ्य—"तब मेरा कोई विरोध नहीं।"

अजात०—"फिर, आपलोग आज की इस मन्त्रणा से सहमत हैं।"

सब—"हम सब को स्वीकार है।"

अजात०—"तथास्तु।"

(सब जाते हैं)

पट परिवर्तन।



दृश्य दूसरा

स्थान पथ।

(मार्ग में बन्धुल)

बन्धुल—' (स्वगत) इस अभिमानी राजकुमार से तो मिलने की इच्छा भी नहीं होती—किन्तु क्या करूं, उसने इस तरह से प्रार्थना की है कि अस्वीकार भी नहीं कर सका। कोशलनरेश ने जो मुझे काशी का सामन्त बनाया है वह मुझे अच्छा नहीं लगता, किन्तु राजा की आज्ञा—मुझे तो सरल और सैनिक जीवनही, रुचिकर है, यह सामन्त का आडम्बरपूर्ण पद कपटाचरण की सूचना देता है। महाराज प्रसेनजित् ने कहा है कि 'शीघ्र ही मगध काशी पर अधिकार करना चाहेगा इस लिये तुम्हारा वहाँ जाना आवश्यक है।' वहाँ का दण्डनायक तो मुझसे प्रसन्न है, अच्छा फिर देखा जायगा। (टहलता है) यह नहीं समझ में आता कि एकान्त में कुमार क्यों मुझसे मिलना चाहता है।"

(विरुद्धक का प्रवेश)

विरुद्धक—"सेनापते! कुशल तो है।"

बन्धुल—"कुमार की जय हो। क्या आज्ञा है। क्या वहाँ पर आप नहीं आ सकते थे। आप क्यों अकेले हैं?"

विरुद्धक—"मित्र बन्धुल ! मैं तो बिल्कुल राजसन्तान हूँ। फिर अपमान सह कर, चाहे वह पिता का ही सिंहासन क्यों न हो, मुझे रुचिकर नहीं।"

बन्धुल—"राजकुमार ! आपको सम्राट् ने निर्वासित तो नहीं किया फिर आप क्यों इस तरह अकेले घूमते हैं। चलिये ! आप का राज्य है, काशी का सिंहासन आपको मैं दिला सकता हूँ। आप कोई चिन्ता न करें।"

विरुद्धक—"नहीं, बन्धुल ! मैं दया से दिया हुआ दान नहीं चाहता। मुझे तो अधिकार चाहिये, स्वत्व चाहिये।"

बन्धुल—"फिर आप क्या करेंगे ?"

विरुद्धक—"जो कर रहा हूँ।"

बन्धुल—"वह क्या ?"

विरुद्धक—" मैं बाहुबल से उपार्जन करूँगा। मृगया करूँगा। क्षत्रिय-कुमार हूँ चिन्ता क्या है। स्पष्ट कहूँ बन्धुल, मैं साहसिक हो गया हूँ। अब वही मेरी वृत्ति है। राज्य स्थापन करने के पहिले मगध के भूपाल भी तो यही कहे जा सकते थे ?"

बन्धुल—"सावधान ! राजकुमार ! यह दुराचार की बात न सोचिये। यदि आप इस पथ से नहीं पलटते तब मेरा कुछ कर्त्तव्य होगा, वह आपके लिये बड़ा कठोर होगा। आतङ्क को दमन करना प्रत्येक राजपुरुष का कर्म है। यह युवराज को भी मानना ही पड़ेगा।"

विरुद्धक—"मित्र बन्धुल! तुम बड़े सरल हो। जब तुम्हारी सीमा के भीतर कोई उपद्रव होगा तो मुझे इसी तरह आह्वान कर सकते हो। किन्तु इस समय तो मैं एक दूसरी—तुम्हारे शुभ की बात—कहने आया हूँ। कुछ समझते हो कि तुमको काशी का सामन्त क्यों बनाकर भेजा गया है।"

बन्धुल—"यह तो बड़ी सीधी बात है। कोशलनरेश इस राज्य को हस्तगत करना चाहते हैं, मगध भी उत्तेजित है, युद्धकी सम्भावना है इसलिये मैं यहाँ भेजा गया हूँ। मेरी वीरता पर कोशल को विश्वास है।"

विरुद्धक—"क्याही अच्छा होता कि कोशल तुम्हारी बुद्धि पर भी अभिमान कर सकता—किन्तु बात कुछ दूसरी ही है।"

बन्धुल—"वह क्या ?"

विरुद्धक—"वह यह कि कोशलनरेश को तुम्हारी वीरता से सन्तोष नहीं, किन्तु आतङ्क है। राजशक्ति किसी को भी इतना उन्नत नहीं देखा चाहती।"

बन्धुल—"फिर सामन्त बना कर मेरा क्यों सम्मान किया गया ?"

विरुद्धक—"यह एक षड़यन्त्र है। जिसमें तुम्हारा अस्तित्व न रह जाय।"

बन्धुल—"विद्रोही राजकुमार! मैं तुम्हें बन्दी बनाता हूँ। सावधान हो!" (पकड़ना चाहता है)

विरुद्धक—"अपनी चिन्ता करो। मैं ही 'शैलेन्द्र' हूँ।"

(विरुद्धक निकल जाता है। फिर, बन्धुल भी चकित होकर चला जाता है)

(श्यामा का प्रवेश)

श्यामा—(स्वगत) "रात्रि चाहे कितनी ही भयानक हो किन्तु प्रेममयी रमणी के हृदय से भयानक वह कदापि नहीं हो सकती। यह देखो पवन मानो किसी डर से धीरे धीरे साँस ले रहा है। किसी आतङ्क से पक्षी वृन्द अपने घोंसलों में जाकर छिप गये हैं आकाश के ताराओं का कुछ नीरव सा है। कोई भयानक बात देखकर भी वह बोल नहीं सकता है, केवल आपस में इङ्गित कर रहे हैं। संसार किसी भयानक समस्या में निमग्न सा प्रतीत होता है किन्तु मैं शैलेन्द्र से मिलने आई हूँ। वह डाकू है तो क्या, मेरी भी अदम्य वासना है। किन्तु मागन्धी। चुप, वह नाम क्यों लेती है। मागन्धी कौशाम्बी के महल में आग लगा कर जल मरी। अब तो मैं श्यामा हूँ, जो काशी की प्रसिद्ध वारविलासिनी है। वासना को चरितार्थ कर रही हूँ। बड़े बड़े राजपुरुष और श्रेष्ठी इस चरण को छूकर अपने को धन्य समझते हैं। धन की कमी नहीं, मान का कुछ ठिकाना नहीं, राजरानी होकर और क्या मिलता था, केवल सापत्न्य ज्वाला की पीड़ा!!"

में जो ज्वाला उठ रही है उसे अब तुम्हारे अतिरिक्त कौन बुझा वेगा। तुम मेरे स्नेह की परीक्षा चाहते थे। बोलो तुम किस प्रकार इसे देखा चाहते हो?"

विरुद्धक—"श्यामा—मैं डाकू हूँ। यदि तुमको इसी क्षण मार डालूँ—"

श्यामा—"तुम्हारे डाकूपन का ही विश्वास करके आई हूं। यदि साधारण मनुष्य समझती—जो ऊपर से बहुत सीधासादा बनता है—तो मैं कदापि यहाँ आने का साहस नहीं करती। किन्तु शैलेन्द्र, लो यह अपना नुकीली कटार इस तड़पते हुए कलेजे में भोंक दो।"

(घुटने के बल बैठ जाती है)

विरुद्धक—"किन्तु श्यामा! अधीन के साथ डाकू ऐसा नहीं करते, उनका भी एक धर्म्म है। तुम से मिलने में इस लिये मैं डरता था कि तुम रमणी हो और वह भी वारविलासिनी, मेरा विश्वास है कि ऐसी रमणियाँ डाकुओं से भयानक हैं।"

श्यामा—"तो क्या अभी तक तुम्हें मेरा विश्वास नहीं। क्या तुम मनुष्य नहीं हो, आन्तरिक प्रेम की शीतलता ने तुम्हें कभी स्पर्श नहीं किया। क्या मेरी प्रणयभिक्षा, असफल होगी, जीवन की कृत्रिमता में दिन रात प्रेम का बनिज करते करते क्या प्राकृतिक स्नेह का स्रोत एक बार ही सूख जाता है। क्या वार-विलासिनी प्रेम करना नहीं जानतीं। क्या कठोर और क्रूर कर्म्म करते करते तुम्हारे हृदय में चेतनलोक की गुदगुदी और कोमल

स्पन्दन नाम को भी नहीं है। क्या तुम्हारा हृदय केवल मांसपिण्ड है। उसमें रक्त का सञ्चार नहीं। नहीं नहीं, ऐसा नहीं—प्रियतम—
(हाथ पकड़कर गाती है)

बहुत छिपाया, उफन पड़ा अब,
सम्हालने का समय नहीं है।
अखिल विश्व में सतत फैला,
अनल हुआ यह प्रणय नहीं है॥

कहीं तड़प कर, गिरे न बिजली
कहीं न वर्षा हो कालिमा की।
तुम्हें न पाकर, शशांक मेरे
महाशून्य है हृदय नहीं है॥

तड़प रही है कहीं कोकिला,
कहीं पपीहा पुकारता है।
यही विरद क्या तुम्हें सुहाता?
कि नील नीरद सदय नहीं है॥

जली दीपमालिका प्राण की,
हृदय कुटी स्वच्छ हो गई है।
पलक पाँवड़े बिछा चुकी हूँ,
न दूसरा कोई है, भय नहीं है॥

चपल निकल कर कहाँ चले अब,
इसे कुचल दो मृदुल चरण से,

फिर आह निकले, दग्ध हृदय से,

भला कहो यह विजय नहीं है !

(दोनों हाथ में हाथ मिलाए ही हुए जाते हैं)

पटपरिवर्तन ।

दृश्य तीसरा

मल्लिका का उपवन ।

(मल्लिका और महामाया)

मल्लिका—"वीरहृदय युद्ध का नाम ही सुनकर नाच उठता है। शक्तिशाली भुजदण्ड, फड़कने लगते हैं । भला मेरे रोकने से वे रुक सकते थे ! कठोर कर्म्मपथ में अपने स्वामी के पैर का कण्टक भी मैं नहीं होना चाहती । वह मेरे अनुराग, सुहाग की वस्तु हैं । फिर भी उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व है जो हमारी शृङ्गारमञ्जूषा में बन्द करके नहीं रखा जा सकता ।" महान हृदय को केवल विलास की मदिरा पिला कर मोह लेना ही स्त्री का कर्त्तव्य नहीं है ।"

महामाया— 'मल्लिका, तेरा कहना ठीक है किन्तु फिर भी—"

मल्लिका—"किन्तु परन्तु नहीं है। मैं तलवार की धार हूँ अग्नि, की भयानक ज्वाला हूँ। वीरता के वरेण्य दूत हैं। मुझे विश्वास है कि सम्मुख युद्ध में शक्र भी उन प्रचण्ड आघातों को रोकने में असमर्थ है। रानी! जिस दिन मैंने कहा था कि 'मैं पावा के अमृ-तसर का जल पीकर स्वस्थ होना चाहती हूँ, पर वह सरोवर पाँच सौ प्रधान मल्लों से सदैव रक्षित रहता है। दूसरी जाति का कोई भी उसमें जल नहीं पीने पाता' उसी दिन स्वामी ने कहा था कि "तभी तो तुम्हें वह जल अच्छी तरह पिला सकूँगा।"

महामाया—"फिर क्या हुआ—?"

मल्लिका—" रथ पर अकेले मुझे लेकर वहीं चले। उस दिन मेरा परम सौभाग्य था, सारी मल्लजाति की स्त्रियाँ मुझपर ईर्षा करती थीं। जब मैं अकेली रथ पर बैठी थी, और मेरे वीर स्वामी ने उन पाँच सौ मल्लों से अकेले युद्ध आरम्भ किया और मुझे आज्ञा दी कि " तुम निर्भय होकर आओ सरोवर में स्नान करो।" पानी पिलाने)

महामाया—'उस युद्ध में क्या हुआ ?"

मल्लिका—"वैसी बाणविद्या पाण्डवों की कहानी में मैंने सुनी थी। देखा, सबके धनुष कटे थे और कमरबन्द के बन्धन से ही वे चल सकते थे। जब वे समीप आकर मल्लयुद्ध में आह्वान करने लगे तब स्वामी ने कहा—'पहले अपने शरीर की अवस्था तो देखो, मैं अर्द्धमृतक घायलों पर अस्त्र नहीं चलाता।' रानी, उनके सेनानी ने जब अपना कमरबन्द खोली तो निर्जीव होकर गिरने लगा। यह देख

सब ग्रस्त हो गये। फिर नाथ ने ललकार कहा कि—'वीर-मल्लगण जाओ अस्त्र-वैद्य से अपनी चिकित्सा कराओ, बीच में जो अपने कमरबन्द खोलेगा, उसी की यह अवस्था होगी!' मल्लमहिलाओं की ईर्षा-पात्र होकर और उस सरोवर का जल स्वेच्छा से पान कर मैं कोशल लौट आई।'

महामाया—"आश्चर्य! ऐसी वाण-विद्या तो अब नहीं देखने में आती। ऐसी वीरता है सो विश्वास करने की बात ही है, फिर भी मल्लिका! राज-शक्ति का प्रलोभन, उसका आदर, अच्छा नहीं है, विष का लड्डू है, गन्धर्वनगर का प्रकाश है। कब क्या परिणाम होगा—निश्चित नहीं है। और इसी वीरता से महाराज को आतङ्क होगया है। यद्यपि मैं इस समय निरादृत हूँ फिर भी मुझसे उनकी बातें छिपी नहीं हैं। मल्लिके! मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ। इस लिये कहती हूँ—"

मल्लिका—"क्या कहा चाहती हो रानी?"

महामाया—"यही कि गुप्त आज्ञापत्र शैलेन्द्र डाँकू के नाम जा चुका है, कि यदि तुम बन्धुल का वध कर सकोगे तो तुम्हारे पिछले सब अपराध क्षमा कर दिये जायँगे, और तुम उनके स्थान पर सेनापति बनाये जाओगे।"

मल्लिका—"किन्तु शैलेन्द्र एक वीर पुरुष है, वह गुप्त हत्या क्यों करेगा। यदि वह प्रकट रूप से युद्ध करेगा तो मुझे निश्चय है कि कोशल का सेनापति उसे अवश्य बन्दी बनावेगा।"

महामाया—"किन्तु मैं जानती हूँ कि वह ऐसा करेगा, क्योंकि प्रलोभन भी बड़ी बुरी वस्तु है।"

मल्लिका—"रानी! बस करो! मैं प्राणनाथ को अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं करा सकती, और उन्हें लौट आने का अनुरोध नहीं कर सकती। सेनापति का राजभक्त कुटुम्ब कभी विद्रोही नहीं होगा और राजा की आज्ञा से वह प्राण दे देना अपना धर्म्म समझेगा जब तक कि स्वयं राजा राष्ट्र का द्रोही न प्रमाणित हो जाय।"

महामाया—"क्या कहूँ। मल्लिका, मुझे दया आती है और तुमसे स्नेह भी है क्योंकि तुम्हें पुत्र वधू बनाने की बड़ी इच्छा थी। किन्तु धमकी कोशलनरेश ने उसे अस्वीकार किया। मुझे इसका बड़ा दुःख है। इसीलिये तुम्हें सचेत करने आई थी।"

मल्लिका—"बस रानी बस। मेरे लिये मेरी स्थिति अच्छी है और और तुम्हारे लिये तुम्हारी। तुम्हारे दुर्विनीत राजकुमार से न व्याही जाने में, मैं अपना सौभाग्य ही समझती हूँ। दूसरे की क्यों, अपनी ही दशा देखो, कोशल की महिषी बनी थीं, अब—

महामाया—"मल्लिका सावधान। मैं जाती हूँ—"

(प्रस्थान)

मल्लिका—"गर्व्वीली-स्त्री, तुझे राजपद की बड़ी अभिलाषा थी किन्तु मुझे कुछ नहीं, केवल स्त्री सुलभ सौजन्य और समवेदना तथा कर्त्तव्य और धैर्य्य की शिक्षा मिली है। भाग्य जो कुछ दिखावे।"

दृश्य चौथा

स्थान—काशी में श्यामा का गृह।

(श्यामा बैठी है)

श्यामा—(स्वगत) "शैलेन्द्र! यह तुमने क्या किया! मेरी प्रणयलता पर कैसा वज्रपात किया। अभागे बन्धुल को ही क्या पड़ी थी कि उसने द्वन्द्वयुद्ध के आह्वान को स्वीकार कर लिया! कोशल का प्रधान सेनापति छल से मारा गया है अब उसी के हाथ से घायल होकर यह भी बन्दी हुआ। शैलेन्द्र! तुम्हें किस तरह बचाऊँ।" (सोचती है)

(समुद्रदत्त का प्रवेश)

समुद्रदत्त—"श्यामा! तुम्हारे रूप की प्रशंसा सुनकर यहाँ चले आने का साहस हुआ है। क्या मैंने कुछ अनुचित किया।"

श्यामा—(देखती हुई) "नहीं श्रीमान्, यह तो आपका घर है। श्यामा आतिथ्य को भूल नहीं सकती—यह कुटीर आपकी सेवा के लिये सर्वैव प्रस्तुत है। सम्भवतः आप परदेशी हैं और इस नगर में नवागत व्यक्ति हैं। बैठिये—क्या आज्ञा है।"

समुद्रदत्त—(बैठता हुआ) "हाँ सुन्दरी, मैं नवागत व्यक्ति हूँ, किन्तु एक बार और आ चुका हूँ। तभी तुम्हारी रूप की

आशा ने मुझे पतङ्ग बनाया था। अब उसमें जलने के लिये आया हूँ। भला इतनी भी कृपा होगी ?"

श्यामा—"मैं आप से विनती करती हूँ कि पहिले आप ठंडे होइये और कुछ थकावट मिटाइये, फिर बातें होंगी। विजया ! श्रीमान् की आज्ञा पूर्ण कर और इन्हें विश्राम दे "

(विजया आती है और समुद्रदत्त को लिवा जाती है)

(एक दासी का प्रवेश)

दासी—"स्वामिनी ! दण्डनायक ने कहा है कि श्यामा की आज्ञा ही मेरे लिये सब कुछ है। हज़ार मोहरों की आवश्यकता नहीं, केवल एक मनुष्य उसके स्थान में चाहिये। क्योंकि सेनापति की हत्या हो गई है और यह बात भी छिपी नहीं है कि शैलेन्द्र पकड़ा गया है। तब, उसका कोई प्रतिनिधि चाहिये, जो सूली पर रातो रात चढ़ा दिया जाय। अभी किसी ने उसे पहचाना भी नहीं है।"

श्यामा—"अच्छा, सुन चुकी। जा शीघ्र वाद्य का उपक्रम ठीक कर। एक बड़े सम्भ्रान्त सज्जन आये हैं। शीघ्र जा, देर न कर—"

(दासी जाती है)

(स्वगत) "स्वर्ण पिञ्जर में भी श्यामा को क्या वह सुख मिलेगा जो उसे हरी डालों पर कसैले फलों को चखने में मिलता है। मुक्त नीलगगन में अपने छोटे २ पंख फैलाकर जब वह उड़ती है तब जैसी उसकी सुरीली तान होती है उसके सामने तो सोने के

पिंजड़े में उसका गान क्रन्दन ही विदित होता है। मैं उसी श्यामा की तरह जो स्वतन्त्र है, राजमहल की परतन्त्रता से बाहर आई हूँ। हँसूँगी और हँसाऊँगी, रोऊँगी और रुलाऊँगी फूल की तरह आई हूँ परिमल की तरह चली जाऊँगी। स्वप्न की चन्द्रिका में मलयानिल की सेजपर खेलूँगी। फूलों की धूल से अङ्गराग बनाऊँगी चाहे उसमें कितनी ही कलियाँ क्यों न तोड़नी पड़ें। अनाहार से चाहे कितनो हीं का फूलों के बिना प्राण जाय, मुझे कुछ चिन्ता नहीं। कुम्हलाकर, फूल को कुचल देने में ही मुझे सुख है।"

(समुद्रदत्त का प्रवेश)

श्यामा—(खड़ी होकर) "चित्त सावधान हुआ, कोई कष्ट तो नहीं हुआ। दासियाँ दुर्विनीत होती हैं, क्षमा कीजियेगा।"

समुद्रदत्त—"सुन्दरियों की तुम महारानी हो और तुम वास्तव में उसी तरह रहती भी हो। तब जैसा गृहस्थ होगा, वैसे आतिथ्य की भी सम्भावना है। बड़ा सुख मिला, हृदय शीतल हो गया।"

श्यामा—"आप तो मेरी प्रशंसा कर के मुझे बार बार लज्जित करते हैं।"

समुद्रदत्त—"सुन्दरी! मैं कह तो नहीं सकता किन्तु मैं बिना मूल्य का दास हूँ। अनुग्रह कर कोमल कण्ठ से कुछ सुनावो।"

श्यामा—"जैसी आज्ञा।"

(इङ्गित [illegible] है, वाद्य बजता है)

(गान और नृत्य)

चला है मन्थर गति से पवन रसीला नन्दन कानन का।
नन्दन कानन का, रसीला नन्दन कानन का ॥ च०॥
फूलों पर आनन्द भैरवी गाते मधुकर वृन्द,
बिखर रही है किस यौवन की—किरण, खिला अरविन्द,
ध्यान है किसके आनन का ॥
नन्दन कानन का, रसीला नन्दन कानन का ॥ च०॥
उषा सुनहला मद्य पिलाती प्रकृति बरसती फूल,
मतवाले होकर देखो तो, विधि निषेध को भूल
आज कर लो अपने मन का।
नन्दन कानन का रसीला नन्दन कानन का ॥ च०॥

समुद्रदत्त—"अहा! श्यामा का सा कण्ठ भी है। सुन्दरी, तुम्हारी जैसी प्रशंसा सुनी थी तुम वैसी ही हो, और एक बार इस तीव्र मादक को पिला दो। पागल हो जाने को इन्द्रियाँ प्रस्तुत हैं।"

(श्यामा इङ्गित करती है, दासियाँ जाती हैं)

श्यामा—"क्षमा कीजिये, मैं इस समय बड़ी चिन्तिता हूँ इस कारण आपको प्रसन्न न कर सकी। अभी दासी ने आकर एक बात ऐसी कही है कि मेरा चित्त चञ्चल हो उठा है। केवल शिष्टाचार वश इस समय मैंने आपको गान सुनाया—"

समुद्रदत्त—"यह कैसी बात है, क्या मैं भी सुन सकता हूँ ?"

श्यामा—"आप अभी तो परदेश से चले आ रहे हैं मुझसे कोई घनिष्ठता भी नहीं, तब कैसे अपना हाल कहूँ।"

समुद्रदत्त—"सुन्दरी! यह तुम्हारा संकोच व्यर्थ है।"

श्यामा—"मेरा भाई कोई अपराध में बंदी हुआ है। और दण्डनायक ने कहा है कि यदि अभी रातभर में मेरे पास हजार मोहरें पहुँच जायँ तो मैं इसे छोड़ दूँगा, नहीं तो नहीं।"

(रोती है)

समुद्रदत्त—"तो इसमें कौन सी चिन्ता की बात है। मैं देता हूँ। इन्हें भेज दो, (स्वगत) मैं भी तो षडयन्त्र करने आया हूँ इसी तरह दो चार अन्तरङ्ग मित्र बनाना चाहिये। जिसमें समय पर काम आवें। दण्डनायक से भी समझ लूँगा—कोई चिन्ता नहीं।"

श्यामा—(मोहरों की थैली देकर) "तो दासी पर दया करके इसे दे आइये, क्योंकि मैं किस पर विश्वास करके इतना धन भेज दूँ? और, यदि आपको पहचाने जाने की शंका हो तो मैं आपका अभी वेश भी बदल दे सकती हूँ।"

समुद्रदत्त—"अजी मोहरें तो मेरे पास हैं इनकी क्या आवश्यकता है।"

श्यामा—"आपकी कृपा है, यह भी मेरी ही है, किन्तु इन्हें तो ले जाइये, नहीं तो आप इसे भी वारवनिताओं की एक चाल समझियेगा।"

समुद्रदत्त—"भला यह कैसी बात—सुन्दरी श्यामा । तुम मेरी हँसी उड़ाती हो । तुम्हारे लिये यह प्राण प्रस्तुत है । बात इतनी है कि वह मुझे पहचानता है ।"

श्यामा—"नहीं, यह तो मेरी पहिली बात आप को माननी ही होगी । और इतना बोझ मुझ पर न दीजिये कि मैत्री में चतुरता की गन्ध आने लगे । हम लोगों को एक दूसरे पर शंका करने का अवकाश मिले । मैं आपका वेश बदल देती हूँ ।"

समुद्रदत्त—"अच्छा प्रिये ! ऐसा ही होगा । मेरा वेश परिवर्तन करा दो ।

(श्यामा वेश बदलती है और समुद्रदत्त को बाला बनाती है)

(समुद्रदत्त मोहरों की थैली लेकर अकड़ता हुआ जाता है)

श्यामा—' जाओ बलि के बकरे, जाओ । फिर न आना । मेरा शैलेन्द्र । मेरा प्यारा शैलेन्द्र !!

"तुम्हारी मोहनी छवि पर निछावर प्राण हैं मेरे ।
अखिल भूलोक बलिहारी मधुर मुसुक्यान पर तेरे ॥"

पट परिवर्तन ।



दृश्य पाँचवाँ

स्थान—सेनापति बन्धुल का गृह ।

(मल्लिका और दासी)

मल्लिका—"संसार में स्त्रियों के लिये पति ही सब कुछ है किन्तु हाय ! आज मैं उसी सोहाग से वञ्चित होगई हूँ । हृदय थरथरा रहा है, कण्ठ भरा आता है—एक निर्दय चेतना, सब इन्द्रियों को अचेतन और शिथिल बनाये दे रही है । आह ! (ठहर कर और निःश्वास लेकर) हे प्रभु ! मुझे बल दो—विपत्तियों को सहन करने के लिये–बल दो । मुझे विश्वास दो कि तुम्हारी शरण आने पर कोई भय नहीं रहता । विपत्ति और दुःख उस आनन्द के दास बन जाते हैं, फिर सांसारिक आतङ्क उसे नहीं डरा सकते हैं । मैं जानती हूँ कि मानव हृदय अपनी दुर्बलताओं में ही सबल होने का स्वाँग बनाता है—किन्तु मुझे उस बनावट से उस दम्भ से बचा लो । शान्ति के लिये साहस दो । सच्चे के लिये बल दो ॥"

दासी—"स्वामिनी धैर्य्य धारण कीजिये !"

मल्लिका—सरला ! धैर्य्य न होता तो अब तक यह हृदय फट जाता–यह शरीर निस्पन्द हो जाता तब भी यह वैधव्य दुःख नारी जाति के लिये कैसा कठोर अभिशाप है वह किसी स्त्री को अनुभव न करना हो, यही प्रार्थना है ।"

दासी—"स्वामिनी इस दुःख में भगवान ही सान्त्वना दे सकेंगे—उन्हीं का अवलम्ब है।"

मल्लिका—"एक बात स्मरण हो आई सरला।"

दासी—"क्या स्वामिनी?"

मल्लिका—"सद्धर्म्म के सेनापति सारिपुत्र मौद्गलायन को कल मैं निमन्त्रण दे आई हूँ सो आज वे आवेंगे। देख, यदि न हुआ हो तो भिक्षा का प्रबन्ध शीघ्र कर, जा शीघ्र जा (दासी जाती है) तथागत! तुम धन्य हो तुम्हारे उपदेशों से हृदय निर्मल हो जाता है तुमने संसार को दुःखमय बताया और उससे छूटने का उपाय भी सिखाया। कीट से लेकर इन्द्र तक की समता घोषित की। अपवित्रों को अपनाया-दुखियों को गले लगाया और अपनी दिव्य करुणा की वर्षा से विश्वको आप्लावित किया—अमिताभ तुम्हारी जय हो!"

[सरला आती है]

सरला—"स्वामिनी! भिक्षा का आयोजन सब ठीक है। कोई चिन्ता नहीं, किन्तु "

मल्लिका—"किन्तु नहीं—सरला! मैं भी व्यवहार को जानती हूँ, पर आतिथ्य—परम धर्म्म है। मैं भी नारी हूँ, नारी के हृदय में जो हाहाकार होता है वह मैं अनुभव कर रही हूँ, शरीर की धमनियाँ खिंचने लगती हैं। जी रो उठता है, तब भी कर्त्तव्य करना ही होगा।

(सारिपुत्र और आनन्द का प्रवेश)

मल्लिका—"जय हो। अमिताभ की जय हो—दासी वन्दन करती है।"

सारिपुत्र—"शान्ति मिले—सन्तोष में तृप्ति हो। देवी! हम आगये—भिक्षा प्रस्तुत है?"

मल्लिका—"देव! यथाशक्ति प्रस्तुत है। पावन कीजिये। चलिये।"

(दासी जल लाती है, मल्लिका पैर धुलाती है। दोनों बैठते हैं, और भोजन करते हैं। लाते समय दूध का पात्र दासी के हाथ से गिर कर टूट जाता है। मल्लिका उसे दूसरा लाने को कहती है।)

आनन्द—"देवि! दासी का अपराध क्षमा करना—जितनी वस्तुएँ बनती हैं वे सब बिगड़ने ही के लिये। यही उसका परिणाम था, उसमें बेचारी दासी को कलङ्क मात्र था।"

मल्लिका—"यथार्थ है।"

सारिपुत्र—"आनन्द! क्या तुमने समझा कि मल्लिका दासी पर रुष्ट है? क्या तुमने इन्हें अभी नहीं पहिचाना? चाँदी का पात्र टूटने से इन्हें क्या क्षोभ होगा—स्वामी के मारे जाने का समाचार अभी हम लोगों के आने के थोड़ी ही देर-पहिले आया है। किन्तु वह भी इन्हें अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं कर सका। फिर, यह तो एक धातुपात्र मात्र था। (मल्लिका से)—शान्ति! करुणे; तू इस संसार को पवित्र करती है। देवी, तेरा धैर्य्य सराहनीय है। आनन्द! लो, इस मूर्तिमती धर्मपरायणता से कर्त्तव्य की शिक्षा लो।"

आनन्द—"महिमामयी! अपराध क्षमा हो। आज हमें विश्वास हुआ कि केवल भगवा लेने से ही धर्म पर एकाधिकार नहीं हो जाता—यह सब चित्त शुद्धि स मिलता है।"

मल्लिका—"पतितपावन की अमोघ वाणी ने दृश्यों की नश्वरता की घोषणा की है। मुझे यह, मोह की दुर्बलता सी दिखाई पड़ती है। उस शासन से कभी विद्रोह न करूंगी, वही मानव का पवित्र अधिकार है। शान्तिदायक धैर्य्य का साधन है। जीवन का विश्राम है (पैर पकड़ती है) महापुरुष! आशीर्वाद दीजिये कि मैं इससे विचलित न होऊँ।"

सारिपुत्र—"उठो देवी! उठो। तुम्हें मैं क्या उपदेश करूँ? तुम्हारा चरित्र धैर्य्य का—कर्त्तव्य का—आदर्श है। तुम्हें अखण्ड शान्ति है। तुम जानती हो कि तुम्हारा शत्रु कौन है—तब भी विश्वमैत्री के अनुरोध से, उससे केवल उदासीन ही न रहो, प्रत्युत द्वेष भी न रखो।"

(महाराज प्रसेनजित का प्रवेश)

प्रसेन०—"महास्थविर! मैं अभिवादन करता हूँ। मल्लिका देवी—मैं क्षमा माँगने आया हूँ।"

मल्लिका—"स्वागत, महाराज! क्षमा किस बात की?"

प्रसेन०—"नहीं—मैंने अपराध किया है। सेनापति बन्धुल के प्रति मेरा हृदय शुद्ध नहीं था—इसलिये, उनकी हत्या का पाप मुझे भी लगता है।"

मल्लिका—"मुझे विदित है महाराज! प्रजा के साथ आप इतना छल प्रवञ्चना और कपट व्यवहार रखते हैं? धन्य हैं!"

प्रसेन०—"मुझे धिक्कार दो—मुझे शाप दो—मल्लिका! तुम्हारे मुखमण्डल पर तो ईर्षा और प्रतिहिंसा का चिन्ह भी नहीं है। जो तुम्हारी इच्छा हो, वह कहो, मैं उसे पूर्ण करूँगा—"

मल्लिका—(हाथ जोड़ कर) कुछ नहीं, महाराज! आज्ञा दीजिये कि आपके राज्य से निर्विघ्न, चली जाऊँ। किसी शांतिपूर्ण स्थान में रहूँ। ईर्षा से आपका हृदय ग्रीष्म के मध्याह्न का सूर्य हो रहा है, उसकी भीषणता से बचकर किसी छाया में विश्राम करूँ। और कुछ भी मैं नहीं चाहती।"

(राजा हाथ जोड़ता है)

सारिपुत्र—"मूर्तिमती करुणे! तुम्हारी विजय है।"

पटपरिवर्तन।

दृश्य छठवाँ

महाराज बिम्बसार का गृह।

(बिम्बसार और वासवी)

बिम्बसार—"रात में ताराओं का प्रभाव विशेष रहने से चन्द्र नहीं दिखाई देता है और चन्द्रमा का तेज बढ़ने से तारे सब फीके

पड़ जाते हैं, क्या इसी को शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष कहते हैं ? देवी कभी तुमने इस पर विचार किया है ?"

वासवी—"नाथ ! हम तो विश्वास है कि नीला पर्दा इसका रहस्य छिपाये है, जितना चाहता है उतना ही प्रकट करता है। कभी तारों को बिखेरता है कभी निशाकर को छाती पर लेकर खेला करता है और कभी कृष्णा कुहू के साथ क्रीड़ा करता है।"

बिम्ब०—"और, कोमल पत्तियों को, जो अपनी डाली पर निरीह लटका करती हैं, प्रभञ्जन क्यों झिंझोड़ता है ?"

वासवी—"उसकी गति है, वह किसी को कहता नहीं है कि तुम मेरे मार्ग में अड़ो, जो साहस करता है उसे हिलना पड़ता है। नाथ ! समय भी इसी तरह चला आ रहा है उसके लिये पहाड़ और पत्ती बराबर हैं।"

बिम्ब०—"फिर उसकी गति भी बराबर नहीं है। ऐसा क्यों ?"

वासवी—"यही समझाने के लिये बड़े २ दार्शनिकों ने कई तरह की व्याख्यायें की हैं किन्तु फिर भी प्रत्येक नियमों में अपवाद लगा दिया है। यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपवाद नियम पर है या नियामक पर। सम्भवत उसे ही लोग अवसर कहते हैं।"

बिम्बसार—"तब तो देवी, प्रत्येक असम्भावित घटना के मूल में यही अवसर है। सच तो यह है कि विश्वभर में स्थल स्थल पर आत्या चक्र है, जल में उसे भँवर कहते हैं स्थल पर उसे अवसर

कहते हैं, राज्य में विप्लव कहते हैं, समाज में उच्छृङ्खलता कहते हैं और धर्म में पाप कहते हैं। चाहे इन्हें नियमों का अपवाद कहो चाहे बवंडर—यही न ?" (छलना का प्रवेश)

बिम्बसार—"यह तो हम लोग तो बवंडर की बात करते थे। तुम यहाँ कैसे पहुँच गईं। राजमाता महादेवी को इस दरिद्र कुटीर में क्या आवश्यकता हुई ?"

छलना—"मैं बवंडर हूँ इसी लिये जहाँ मैं चाहती हूँ असम्भावित रूप से चली आती हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस प्रवाह में कितनी सामर्थ्य है। इसमें आवर्त्त उत्पन्न कर सकती हूँ कि नहीं।"

वासवी—"छलना! बहिन! तुमको क्या हो गया है ?"

छलना—"प्रमाद—और क्या। अभी सन्तोष नहीं हुआ, इतने उपद्रव करा चुकी हो, और भी कुछ शेष है ?"

वासवी—"क्यों, अजात तो अच्छी तरह है ? कुशल तो है ?"

छलना—"क्या चाहती हो। समुद्रदत्त काशी में मारा ही गया। कोशल और मगध में युद्ध का उपद्रव हो रहा है। अजात उसमें गया है। साम्राज्य भर में आतङ्क है।"

बिम्बसार—"युद्ध में क्या हुआ ? अथवा-मुझे क्या ?"

छलना—"शैलेन्द्र नाम के डाकू ने द्वन्द्व युद्ध में आह्वान करके फिर धोखा देकर कोशल के सेनापति को मार डाला। सेनापति के

मर जाने से सेना घबराई थी, उसी समय अजात ने आक्रमण कर दिया और विजयी हुआ—काशी पर अधिकार हो गया।"

वासवी—"तब इतना घबराती क्यों हो। अजात को रण-दुर्मद साहसी बनाने के लिये ही तो तुम इतनी उत्कण्ठित थीं—राजकुमार को तो ऐसी उद्धत शिक्षा तुम्हीं ने दी थी। फिर उलाहना क्यों?"

छलना—"उलाहना! क्यों न दूँ। जब कि तुमने जान बूझ कर यह विप्लव खड़ा किया है। क्या तुम इसे नहीं दबा सकती रहीं, क्योंकि वह तो तुम्हारे नैहर मे तुम्हें मिला हुआ प्रान्त था।"

वासवी—"जिसने दिया था यदि वह ले ले तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं उसे न लौटा दूँ? तुम्हीं बतलाओ कि मेरा अधिकार छीन कर जब कि नाथ ने तुम्हें दे दिया, तब भी मैंने कोई विरोध किया था।"

छलना—"यह ताना सुनने मैं नहीं आई हूँ। वासवी, तुमको तुम्हारी असफलता सूचित करने आई हूँ।"

बिम्बसार—"तो राजमाता को कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी। यह तो एक सामान्य अनुचर कर सकता था।"

छलना—"किन्तु वह मेरी जगह तो नहीं हो सकता था और संदेश अच्छी तरह से नहीं कहता। तुम्हारे मुख के प्रत्येक सिकुड़नों पर इस प्रकार लक्ष्य नहीं रखता, न तो वासवी को इतना प्रसन्न ही कर सकता।"

बिम्बसार—(खड़ा होकर) "छलना! हमने राजदण्ड छोड़ दिया है, किन्तु मनुष्यता ने अभी हमें नहीं परित्याग किया है। सहन की भी सीमा होती है। अधम नारी—पामरी, चली जा। तुझे लज्जा नहीं—बर्बर लिच्छिवी रक्त—"

वासवी—बहिन जाओ, सिंहासन पर बैठ कर राज्य कार्य देखो। व्यर्थ झगड़ने से तुम्हें क्या सुख मिलेगा। और अधिक तुम्हें क्या कहूँ। तुम्हारी बुद्धि।"

(छलना जाती है)

वासवी—(प्रार्थना करती है)

दाता सुमति दीजिये।

मानव हृदय बीच करुना से सींच कर।
बोधने विवक बीज, अकुरित कीजिये॥
दाता सुमति दीजिये।

(जीवक का प्रवेश)

जीवक—"जय होय देव।"

बिम्बसार—"जीवक, स्वागत। बन्धु, तुम बड़े समय पर आये। इस समय हृदय बड़ा उद्विग्न था। कोई नया समाचार सुनाओ।"

जीवक—"कौशाम्बी के समाचार तो लिख कर भेज चुका। नया समाचार यह है कि मागन्धी का सब षड़यन्त्र खुल गया

और राजकुमारी पद्मावती का पूर्ववत् फिर गौरव हो गया। और वह दुष्टा मागन्धी महल में आग लगा कर जल मरी।"

बिम्ब०—"बेटी पद्मा! प्राण बचे। इतने दिनों तक वही दुखी रही। क्यों जीवक!!"

वासवी—"और कोशल का क्या समाचार है? विरुद्धक को भाई ने क्षमा किया, या नहीं? वह आजकल कहाँ है?"

जीवक—"वही तो काशी का शैलेन्द्र है। उसने मगधनरेश— नहीं नहीं—कुमार कुणीक से मिलकर कोशल सेनापति बन्धुल को मार डाला, और स्वयं इधर उधर विद्रोह करता फिर रहा है।"

वासवी—"यह क्या है? भगवन्! बच्चों को यह क्या सूझी है? क्या यही राजकुल की शिक्षा है?"

जीवक—"और महाराज प्रसेनजित घायल होकर रणक्षेत्र से पलट गये। फिर कोई नई बात हुई हो तो मैं नहीं जानता।"

बिम्बसार—"जीवक! अब तुम विश्राम करो। अब और कोई समाचार सुनने की इच्छा नहीं है। सब संसार भर में पुत्रों का पिता से विद्रोह, पति का पत्नी से संघर्ष—हत्या—अभियोग, षड़यन्त्र और प्रतारणा, यही सब तुम सुनाओगे, ऐसा मुझे निश्चय होगया। जाने दो। एक शीतल निश्वास लेकर तुम विश्व के वात्याचक्र से अलग हो जाओ। और इसपर प्रलय के सूर्य की किरणों से तप कर गलते हुए गीले लोहे की वर्षा होने दो। अविश्वास की आँधियों को सरपट दौड़ने दो। पृथ्वी के प्राणियों में अन्याय बढ़े, जिसमें दग्ध होकर

लोग अनीश्वरवादी हो जायँ और प्रति दिन नई समस्या हल करते २ कुटिल कृतघ्न जीव अपनी मूर्खता की धूल उड़ावें—और विश्व भर में इस पर एक उन्मत्त अट्टहास हो ।

(उद्विग्न भाव से जाता है)

पटपरिवर्तन ।



दृश्य सातवाँ

स्थान-कोशल की सीमा ।

(मल्लिका की कुटी में मल्लिका और दीर्घकारायण)

दीर्घकारायण—"नहीं, मैं कभी इसका अनुमोदन नहीं कर सकता । आप चाहे इसे बहुत धर्म समझें, किन्तु साँप को जीवन-दान देना कभी भी लोकहितकर नहीं है ।"

मल्लिका—"कारायण ! तुम्हारा रक्त अभी बहुत खौल रहा है । तुम्हारी प्रतिहिंसा की बर्बरता वेग पर है, किन्तु सोचो, विचारो कि जिसके हृदय में विश्वमैत्री के द्वारा करुणा का उद्रेक हुआ है उसे अपकार का स्मरण क्या कभी अपने कर्त्तव्य से विचलित कर सकता है ?"

कारायण—"आप देवी हैं । उस उच्च जगत की और मण्डल से भिन्न जो केवल कल्पना के आधार पर स्थित है, बातें सोच

सकती हैं। किन्तु, हम इस संघर्षपूर्ण जगत के जीव हैं जिसमें कि शून्य भी प्रतिध्वनि ऐसा है जहाँ किसी को वेग से कंकड़ी मारने पर वह कंकड़ी मारने वाले की ओर पलटने की चेष्टा करती है। इसलिये, मैं तो यही कहूँगा कि इस मरणासन्न घमंडी और दुर्वृत्त कोशल-नरेश का रक्षा आपको नहीं करनी थी।"

मल्लिका —"अपना कर्त्तव्य मैं अच्छी तरह जानती हूँ। करुणा की विजय पताका के नीचे हमने प्रयाण करने का दृढ़ विचार करके उसकी वश्यता स्वीकार कर ली है। अब एक पग भी पीछे हटने का अवकाश नहीं है। विश्वासी सैनिक के समान नश्वर जीवन का बलिदान करूँगी—कारायण।"

कारायण—" तब मैं जाता हूँ—जैसी इच्छा।"

मल्लिका—"ठहरो, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ। क्या तुम इस युद्ध में नहीं गये थे। क्या तुमने अपने हाथों जान बूझ कर कोशल का पराजय नहीं मोल लिया था? क्या सच्चे सैनिक के समान ही तुम इस रणक्षेत्र में लड़े थे। तब भी कोशलनरेश की यह दुर्दशा हुई। जब तुम इस लघुसत्य को पालने में असमर्थ हुए तब तुमसे और महान स्वार्थत्याग की क्या आशा की जाय? मुझे विश्वास है कि यदि कोशल की सेना अपने सत्य पर रहती तो यह दुःखद घटना न होने पाती।"

कारायण—"इसमें मेरा क्या अपराध है? जैसी सब की, वैसी ही मेरी भी इच्छा थी।"

(कुटी में से पायल प्रसेनजित निकलता है)

प्रसेन०—"देवी ! तुम्हारे उपकारों का बोझ मुझे असह्य हो रहा है । तुम्हारी शीतलता ने इस जलते हुए लोहे पर विजय प्राप्त कर ली है । बार बार क्षमा माँगने पर भी हृदय को सन्तोष नहीं होता । अब मैं श्रावस्ती जाने की आज्ञा चाहता हूँ ।"

मल्लिका—"सम्राट् ! क्या आपको मैंने बन्दी कर रखा है ? यह कैसा प्रश्न ? बड़ी प्रसन्नता से आप जा सकते हैं ।"

प्रसेन०—नहीं, देवी ! इस दुराचारी के पैरों में तुम्हारे उपकारों की बेड़ी और हाथों में क्षमा की हथकड़ी पड़ी है । जबतक तुम कोई आज्ञा देकर इसे मुक्त नहीं करोगी, यह चले जाने में असमर्थ है ।"

मल्लिका—"कारायण ! यह तुम्हारे सम्राट् हैं—जाओ ! इन्हें राजधानी तक सकुशल पहुँचा दो, मुझे तुम्हारे बाहुबल पर भरोसा है ।"

प्रसेन०—"कौन कारायण ! सेनापति बन्धुल का भागिनेय ।"

कारायण—" हाँ श्रीमान् ! वही कारायण, अभिवादन करता है ।"

प्रसेन०—" कारायण ! माता ने आज्ञा दी है तुम मुझे कल पहुँचा दोगे ! देखो जननी की यह मूर्ति ! विपद में बच्चे की तरह जिसने मेरी सेवा की है क्या तुम इसमें भक्ति करते हो । यदि तुमने इन दिव्य चरणों की भक्ति पाई है तो तुम्हारा जीवन धन्य है ।" (मल्लिका का पैर पकड़ता है)

मल्लिका—"उठिये सम्राट् ! उठिये। मर्य्यादा भङ्ग करने का आपको भी अधिकार नहीं है।"

प्रसेन०—"यदि आज्ञा हो तो मैं दीर्घकारायण को अपना सेनापति बनाऊँ और इसी वीर वक्षस्थल में स्वर्गीय सेनापति बन्धुल की प्रतिकृति देखकर। अपने कुकर्म्म का प्रायश्चित करूँ। देवी ! मैं स्वीकार करता हूँ कि महात्मा बन्धुल के साथ मैंने घोर अन्याय किया है। और आपने मुझे एक भी कटु वाक्य न कह कर उसका कठोर दण्ड दिया है, हृदय में इसकी बड़ी ज्वाला है। एकबार देवी ! एक अभिशाप दे दो, जिसमें नरक की ज्वाला शान्त हो जाय और पापी प्राण निकलने में सुख पावें।"

मल्लिका—"अतीत के वज्र-कठोर-हृदय पर जो कुटिल रेखा-चित्र खिंच गये हैं वे क्या कभी मिटेंगे ? यदि आपकी इच्छा है तो वर्त्तमान में कुछ रमणीय सुन्दर चित्र खींचिये, जो भविष्य में उज्वल होकर दर्शकों के हृदय को शान्ति दें। दूसरों को सुखी करके सुख पाने का अभ्यास कीजिये।"

प्रसेनजित—"आपका आशीर्वाद सफल हो, चलो कारायण।"

(दोनों नमस्कार करके जाते हैं। प्रभात का प्रवेश)

मल्लिका—(प्रार्थना करती है)

अधीर न हो चित्त विश्व-मोह-जाल में ॥

यह वेदना विलोल वीचि का समुद्र है।

है दुःख का भँवर चला कराल चाल में ॥

यह भी क्षणिक इसे कहीं टिकाव है नहीं।
सब लौट जायँगे उसी अनादि काल में॥
अधीर न हो चित्त विश्व-मोह-जाल में।

अजात०—"कहाँ गया। मेरे क्रोध का कन्दुक, मेरी क्रूरता का खिलौना, कहाँ गया। रमणी शीघ्र बता—वह घमंडी कोशल सम्राट् कहाँ गया।"

मल्लिका—"शान्त हो। राजकुमार कुणीक। शान्त हो। तुम किसे खोजते हो? बैठो। अहा सुन्दर मुख, इसमें भयानकता क्यों ले आते हो? सहज सुन्दर वदन को क्यों विकृत करते हो? शीतल हो, विश्राम लो। देखो, यह अशोक की शीतल छाया तुम्हारे हृदय को कोमल बना देगी—बैठ जाओ।"

अजात०—(मुग्ध सा बैठ जाता है) "क्या यहीं प्रसेनजित नहीं रहा, अभी मुझे गुप्तचर ने समाचार दिया है।"

मल्लिका—"हाँ, इसी आश्रम में उनकी शुश्रूषा हुई है। और वे स्वस्थ होकर अभी २ गये हैं। पर तुम उन्हें लेकर क्या करोगे? तुम उष्णरक्त चाहते हो या इस दौड़ धूप के बाद का शीतल हिमजल? युद्ध में जब यशार्जन कर चुके, तब हत्या करके क्या अब हत्यारे बनोगे? वीरों को विजयलिप्सा होनी चाहिये न कि हत्या की।"

अजात०—"देवी! आप कौन हैं? हृदय नम्र होकर आप ही प्रणाम करने को झुक रहा है। ऐसी पिघला देनेवाली वाणी तो मैंने कभी सुनी नहीं।"

मल्लिका—"मैं स्वर्गीय कोशल-सेनापति की विधवा हूँ। जिसके जीवन से तुम्हारी बड़ी हानि थी। और उसे षड़यन्त्र के द्वारा मरवा कर तुमने काशी का राज्य हस्तगत किया है।"

अजात०—"वह षड़यन्त्र स्वयं कोशलनरेश का था। क्या यह आप नहीं जानतीं।"

मल्लिका—"जानती हूँ, और यह भी जानती हूँ कि सब सृष्टि एक इसी मिट्टी में मिलेंगे।"

अजात०—"तब भी आप ने उस अधम जीवन की रक्षा की। ऐसी क्षमा! आश्चर्य! यह देव कर्त्तव्य "

मल्लिका—"नहीं राजकुमार, यह देवता का नहीं मनुष्य का कर्त्तव्य है। उपकार, करुणा, समवेदना और पवित्रता मानव हृदय के लिये ही बने हैं।"

अजात०—"क्षमा हो देवी! मैं जाता हूँ। अब कोशल पर आक्रमण नहीं करूँगा। इच्छा थी कि इसी समय इस दुर्बल राष्ट्र को हस्तगत करूँ, किन्तु नहीं, अब लौट जाता हूँ।"

मल्लिका—"जाओ, गुरुजनों को सन्तुष्ट करो।"

(अजात जाता है)

पटपरिवर्त्तन।

दृश्य आठवाँ

स्थान—श्रावस्ती का एक उपवन ।

(शैलेन्द्र बैठा है, और श्यामा सोई हुई है)

शैलेन्द्र–(स्वगत) "काशी के उस सकीर्ण भवन में छिपकर रहते रहते चित्त घबरा गया था। समुद्रदत्त के मारे जाने का मैं ही कारण था, इस लिये प्रकाश्य रूप से अजातशत्रु से मैं मिलकर कोई कार्य्य भी नहीं कर सकता था। इस पामरी नारी की गोद में मुंह छिपा कर कितना दिन बिताऊँ ? हमारे भावी कार्य्यों में अब यह विघ्न स्वरूप हो रही है। यह प्रेम दिखाकर मेरी स्वतन्त्रता हरण कर रही है। अब नहीं, मैं इस गर्त में अब नहीं गिया रहूँगा। कर्मपथ के कोमल और मनोहर कटकों को कठोरता से—निर्दयता से—हटाना ही पड़ेगा। तब, आज से अच्छा समय कहाँ-

(श्यामा सोई हुई भयानक स्वप्न देख रही है, स्वप्न में चौंक कर उठती है)

श्यामा–"शैलेन्द्र " ।

शैलेन्द्र—" क्यों प्रिये !"

श्यामा—"प्यास लगी है !"

शैलेन्द्र—"क्या पियोगी ?"

श्यामा—'जल !"

शैलेन्द्र—" प्रिये ! जल तो नहीं है। यह शीतल पेया है पी लो ! "

श्यामा—" विष। ओह सिर घूम रहा है। मैं बहुत पी चुकी हूँ। अब अल' भयानक स्वप्न। क्या तुम मुझे जलते हुए, हलाहल की मात्रा पिला दोगे।

अमृत हो जायगा, विष भी पिला दो हाथ से अपने।
पलक भर झुक चुके हैं हम, उसी म बस लगे कँपने॥
विकल हैं इन्द्रियाँ बस देखते इस रूप के सपने।
जगत विस्मृत, हृदय पुलकित, लगा तब नाम है जपने॥

शैलेन्द्र—" छिः यह क्या कह रही हो ? कोई स्वप्न देख रही थी क्या ? लो थोड़ी पी लो।'

(पिला देता है)

श्यामा—"मैंने अपने जीवन भर में तुम्हीं को प्यार किया है। तुम मुझे धोखा तो नहीं दोगे। ओह! कैसा भयानक स्थान है उसी स्वप्न की तरह "

शैलेन्द्र—" क्या बक रही हो। सो जाओ। विहार से थकी हो।"

श्यामा—[आँख बन्द किये हुए] ' क्यों यहाँ ले आये। क्या घर में सुख नहीं मिलता था।"

शैलेन्द्र—' 'कानन की हरी भरी शोभा देखकर जी बहलाना चाहिये, न कि तुम इस प्रकार बिछली जा रही हो।"

श्यामा—"नहीं, नहीं, मैं आँख नहीं खोलूगी, डर लगता है तुम पर मेरा विश्वास है। यहीं रहो।"

(निद्रित होती)

शैलेन्द्र—[स्वगत] " सो गई। आह हृदय में एक वेदना उठती है, ऐसी सुकुमार वस्तु। नहीं नहीं। किन्तु विश्वास के बल पर ही इसने समुद्रदत्त के प्राण लिये। यह नागिन है पलटते देर नहीं। और हमें अभी प्रतिशोध लेना है। दावाग्नि से बढ़कर फैलना है, उसमें चाहे सुकुमार तृण कुसुम हो अथवा विशाल-शाल वृक्ष। दावाग्नि या अन्धड़ उस छोटे फूल को बचाकर नहीं चलेगा। तो बस "

श्यामा—(जागकर) "शैलेन्द्र। विश्वास! देखो कहाँ ओह भयानक " (आँख बन्द कर लेती है)

शैलेन्द्र—"तब देर क्या। कहीं कोई आजायगा फिर (श्यामा का गला घोंटता है। वह क्रन्दन कर के शिथिल हो जाती है) बस चलें। पर नहीं, धन की भी आवश्यकता है।

(आभूषण उतार कर जाता है)

(गौतमबुद्ध और आनन्द का प्रवेश)

आनन्द—"भगवन्! देवदत्त ने तो अब बड़े उपद्रव मचाये। तथागत को कलङ्कित और अपमानित करने में कौन से उपाय नहीं किये। उसे इसका फल मिलना चाहिये।"

गौतम—"यह मेरा काम नहीं—वेदना और संज्ञाओं का दुःख अनुभव करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। हमें अपने कर्तव्य करने चाहियें, दूसरों के मलिन कर्मों को विचारने से भी चित्त पर मलिन छाया पड़ती है।"

आनन्द—"देखिये। अभी चिञ्चा को लेकर उसने कितना बड़ा अपवाद लगाना चाहा था और आपकी मर्यादा गिरानी चाही थी।"

गौतम—"किन्तु सत्य सूर्य्य को कहाँ कोई चलनो से ढँक लेगा? इस क्षणिक प्रवाह में सब विलीन हो जायँगे। मुझे अकार्य्य करने से क्या लाभ! चिञ्चा का ही देखो, अब यह बात खुल गई कि उसे गर्भ नहीं है वह केवल मुझे अपवाद लगाना चाहती थी। सभी उसकी कैसी दुर्गति हुई। शुद्ध बुद्धि की प्रेरणा से सत्कर्म्म करते रहना चाहिये। दूसरों की ओर उदासीन हो जाना ही शत्रुता की पराकाष्ठा है। आनन्द! दूसरों का अपकार सोचने से अपना हृदय भी मलिन होता है।"

आनन्द—"यथार्थ है प्रभो, (श्यामा के शव को देखकर) अरे यह क्या? चलिये गुरुदेव! यहाँ से शीघ्र हट चलिये। देखिये, अभी यहाँ कोई काण्ड सघटित हुआ है।"

गौतम—"अरे यह तो कोई स्त्री है, उठाओ आनन्द! इसे सहायता की आवश्यकता है।"

आनन्द—"तथागत! आपके प्रतिद्वन्द्वी इससे बड़ा लाभ उठावेंगे। यह मृतक स्त्री विहार में लेजाकर क्या आप कलङ्कित होना चाहते हैं?"

गौतम—"क्या करुणा का आदेश कलङ्क के डर से भूल जाओगे? यदि हम लोगों की सेवा से वह कष्ट से मुक्त हो गई, तब? और मैं निश्चय करके कहता हूँ कि यह मरी नहीं है।

आनन्द, विलम्ब न करो। यदि यह यों ही पड़ी रही तब भी तो विहार के पीछे ही है उस अपवाद से हम लोग कहाँ बचेंगे।"

आनन्द—"प्रभु ! जैसी आज्ञा।"

[उसे उठाकर दोनों जाते हैं]

[शैलेन्द्र का प्रवेश]

शैलेन्द्र—"उसे कोई उठा ले गया। चलो मैं भी उसके घर में जो कुछ था ले आया। अब कहाँ चलना चाहिये। श्रावस्ती तो अपनी ही राजधानी है। यहाँ तो अब एक क्षण भी मैं नहीं ठहरूँगा माता से भेंट हो चुकी, इतना द्रव्य हाथ लग चुका। बस कारायण से मिलता हुआ एकबारही सीधे राजगृह। रहा अजात से मिलना। किन्तु अब कोई चिन्ता नहीं श्यामा तो रही नहीं, कौन रहस्य खोलेगा। समुद्रदत्त के लिये मैं भी कोई बात बना दूँगा। तो चलूँ, इस सघाराम में कुछ भीड़ सी एकत्र हो रही है यहाँ ठहरना अब ठीक नहीं।"

[जाता है]

[एक भिक्षु का प्रवेश]

भिक्षु—"आश्चर्य्य ! वह मृत स्त्री जी उठी और इतनी ही देर में दुष्टों ने कितना आतङ्क फैला दिया था। समग्र विहार मनुष्यों से भर गया था। कोई, दुष्ट लोगों को उभाड़ने के लिये कह रहा था कि 'पाखण्डी गौतम ने ही उसे मार डाला। इस हत्या में गौतम की तो कोई बुरी इच्छा थी।' किन्तु, उसके स्वस्थ होते ही सब के मुख में कालिख लगा गया। और अब तं/

लोग कहते हैं कि 'धन्य हैं, गौतम बड़े महात्मा हैं, मरी हुई स्त्री को जिला दिया।' मनुष्य के मुख में भी तो साँपों की तरह दो जीभें हैं। चलूँ देखूँ कोई बुला रहा है।"

[जाता है]

[रानी शक्तिमती और कारायण का प्रवेश]

रानी—"क्यों सेनापति, तुम तो इस पद से बड़े सन्तुष्ट होगे? अपने मातुल की दशा तो अब तुम्हें भूल गई होगी?"

कारायण—"नहीं रानी! यह भी इस जन्म में भूलने की बात है। क्या करूँ, मल्लिकादेवी की आज्ञा से मैंने यह पद ग्रहण किया है। किन्तु हृदय में बड़ी ज्वाला धधक रही है।"

रानी—"पर तुम्हें इसके लिये चेष्टा करनी चाहिये। न कि स्त्रियों की तरह रोने से काम चलेगा। विरुद्धक ने तुम से भेंट की थी।"

कारायण-"बड़े साहसी हैं? मुझसे कहने लगे कि अभी मैंने एक हत्या की है और उससे मुझे यह धन मिला है सो तुम्हें गुप्त सेना सगठन के लिये देता हूँ। और मैं फिर उद्योग में जाता हूँ। यदि तुमने धोखा दिया तो विचार लेना शैलेन्द्र किसी पर दया करना नहीं जानता। उस समय तो मैं केवल बात ही सुनकर स्तब्ध रह गया। बस स्वीकार सूचक सिर हिला दिया—रानी! उस युवक को देखकर मेरी आत्मा काँपती है।"

रानी—"अच्छा तो प्रबन्ध ठीक करो। और सहायता मैं दूगी। पर यहाँ भी अच्छा खेल हुआ ...."

कारायण-" हम लोग भी तो उसी का दर्शन आये थे, आश्चर्य! क्या जाने कैसे वह स्त्री जी उठी! नहीं तो अभी ही गौतम का सब महात्मापन भूल जाता ।"

रानी-"अच्छा अब हम लोगों को शीघ्र चलना चाहिये, जनता सब नगर की ओर जा रही है। देखो, सावधान रहना, मेरा रथ भी बाहर खड़ा होगा ।"

कारायण—"कुछ सेना अपनी निज की प्रस्तुत कर लेता हूँ जो कि राजसेना से बराबर मिली जुली रहेगी और काम के समय हमारी आज्ञा मानेगी ।"

रानी—"और भी एक बात कह देती हूँ कि कौशाम्बी का दूत आया है, सम्भवतः कौशाम्बी और कोशल की सेना मिलकर अजात पर आक्रमण करेगी। उस समय तुम क्या करोगे ।"

कारायण—"उस समय वीरों की तरह मगध पर आक्रमण करूंगा और सम्भवतः इस बार अवश्य अजात को बन्दी बनाऊंगा। अपने घर की बात अपने घर में निपटेगी ।"

रानी-(कुछ सोचकर) "अच्छा ।"

[दोनों जाते है]

पटपरिवर्त्तन ।

दृश्य नवाँ

स्थान—कौशाम्बी का पथ।

[जीवक और वसंतक]

वसन्तक—"(हँसता हुआ) तब इसमें मेरा क्या दोष ?"

जीवक—"जब तुम दिन रात राजा के समीप रहते हो और उनके सहचर बनने का तुम्हें गर्व है, तब तुमने क्यों नहीं ऐसी चेष्टा की।"

वसन्तक—"कि राजा बिगड़ जायँ।"

जीवक—"अरे बिगड़ जायँ कि सुधर जायँ। ऐसी बुद्धि को "

वसन्तक—'धिक्कार है। जो इतना भी न समझे कि राजा अपने चाहे पीछे सुधर जाँय, अभी तो हमसे बिगड़ जायँगे।"

जीवक—'तब तुम क्या करते हो ?"

वसन्तक—"दिन रात सीधा किया करते हैं। बिजली की रेखा की तरह टेढ़ी जो राजशक्ति है उसे दिन रात सँवार कर पुचकार कर, भयभीत होकर, प्रशंसा करके सीधा करते हैं। नहीं तो न जाने किस पर वह गिरे। फिर महाराज! पृथ्वीनाथ! यथार्थ है, आश्चर्य इत्यादि के काथ में पुटपाक "

जीवक—"चुप रहो, यको मत, तुम्हारे ऐसे मूर्खों ने ही तो सभा को बिगाड़ रक्खा है। जब देखो परिहास।"

वसन्तक—"परिहास नहीं अट्टहास। उसके बिना क्या लोगों का अन्न पचता है। क्या बल है तुम्हारी मूटी में। अरे। जो मैं सभा को बनाऊँ तो क्या अपने को बिगाड़ू और फिर झाड़ू लेकर पृथ्वी देवता को मोरछल करता फिरूँ? देखो न अपना मुख आदर्श में। चले थे सभा बनाने, राजा को सुधारने। इस समय तो "

जीवक—" तो इससे क्या? हम अपना कर्तव्य पालन करते हैं, दुःख से हम विचलित तो होते नहीं—

क्षोभ सुख का नहीं, न तो डर है।
प्राण कर्तव्य पर निछावर है॥

वसन्तक—"तो इससे क्या? हम भी अपना पेट पालन करते हैं, अपनी मर्य्यादा बढ़ाये रहते हैं, किसी और के दुःख से हम भी टस से मस नहीं होते। एक बाल भर भी नहीं, समझा। और काम, कितना सम पर और सुरीला करते हैं सो भी जानते हो? जहाँ उन्होंने आज्ञा दी कि "इसे मारो" हम तत्काल ही सम पर सुरीले स्वर में बोलते हैं कि "रोऽऽऽ",

जीवक—" जाओ रोओ।"

वसन्तक—" क्या तुम्हारे नाम को? अरे रोएँ तुम्हार से परोपकारी, जो राजा को समझाया चाहते हैं। घंटों बकवाद करके तुम्हें भी तङ्ग करना और अपने मुख को कष्ट देना। जो जीभ

अच्छा स्वाद लेने के लिये बनी है उसे व्यर्थ हिलाना डुलाना। अरे यहाँ तो जब राजा ने एक लम्बी चौड़ी आज्ञा सुनाई, उसी समय " यथार्थ है श्रीमान् " कहकर विनीत होकर गर्दन झुका ली—बस इति श्री। नहीं तो राजसभा में बैठने कौन देता है।"

जीवक—" तुम लोग जैसे चाटुकारों का भी कैसा अधम जीवन है।"

वसन्तक—" और आप जैसे लोगों का उत्तम? कोई माने चाहे न माने टाँग अड़ाये जाते हैं। मनुष्यता का ठीका लिये फिरते हैं।"

जीवक—"अच्छा भाई तुम्हारा कहना ठीक है, जाओ किसी प्रकार से पिंड भी छूटे।"

वसन्तक—" पद्मावती देवी ने कहा है कि 'आर्य जीवक से कह देना कि अजात का कोई अनिष्ट न होने पावेगा, केवल शिक्षा के लिये ही यह आयोजन है। और माताजी से विनती से कह देंगे कि पद्मावती बहुत शीघ्र उनका दर्शन श्रावस्ती में करेगी।"

जीवक—" अच्छा तो क्या युद्ध होना अवश्य है?"

वसन्तक—"हाँ जी, प्रसेनजित भी प्रस्तुत हैं। महाराज उदयन से मन्त्रणा ठीक हो गई है। आक्रमण हुआ ही चाहता है। महाराज बिम्बसार की सेवा ठीक रखना अब यहाँ हम लोग आयाही चाहते हैं, पत्तल परसा रहे—समझा न?"

जीवक—"अरे पेटू। युद्ध में तो कौवे गिद्ध पेट भरते हैं।"

वसन्तक—"और इस आपस के युद्ध में ब्राह्मण भोजन करेंगे, ऐसी तो शास्त्र की आज्ञा ही है। क्योंकि युद्ध से प्रायश्चित्त लगता है। फिर तो बिना ह-ह-ह-ह।

(पेट पर हाथ फेरता है)

जीवक—"जाओ महाराज-दण्डवत।"

(दोनों जाते हैं)

पटपरिवर्तन।

दृश्यदसवाँ

मगध में छलना का प्रकोष्ठ।

(छलना और अजातशत्रु)

छलना—"बस थोड़ी सी सफलता मिलते ही अकर्मण्यता ने सन्तोष का मोदक खिला दिया। पेट भर गया। क्या तुम नहीं जानते कि "सन्तुष्टाश्चमहीपतिः।"

अजात०—"माँ! क्षमा हो। युद्ध में बड़ी भयानकता होती है, कितनी स्त्रियाँ अनाथ हो जाती हैं। सैनिक जीवन का महत्वमय चित्र न जाने किस षड्यन्त्रकारी मस्तिष्क की भयानक कल्पना है। सभ्यता से जो पाशव वृत्ति मानव की दबी हुई रहती है उसी

को इसमें उत्तेजना मिलती है। युद्धस्थल का दृश्य बड़ा भीषण होता है।"

छलना—"कायर! आँख बन्द कर ले। यदि ऐसा ही था तो क्यों बूढ़े बाप को हटा कर सिंहासन पर बैठा।"

अजात०—"तुम्हारी आज्ञा से। माँ मैं आज सिंहासन से हट कर पिता की सेवा करने को प्रस्तुत हूँ।"

देवदत्त—(प्रवेश कर के) "किन्तु अब बहुत दूर तक बढ़ आये, लौटने का समय नहीं है। उधर देखो, कोशल और कौशाम्बी की सम्मिलित सेना मगधपर गरजती चली आ रही है।"

छलना—"यदि उसी समय आक्रमण कोशल पर हो जाता तो आज इसका अवकाश ही न मिलता।"

देवदत्त—"समुद्रदत्त का मारा जाना आपको अधीर कर रहा है किन्तु क्या समुद्रदत्त के ही भरोसे आप सम्राट् बने थे। वह निर्बोध विलासी—उसका ऐसा परिणाम तो होना ही था। पौरुष करनेवाले को अपने बलपर विश्वास करना चाहिये। युवराज!"

छलना—"बच्चे! मैंने बड़ा भरोसा किया था कि तुम्हें भारतखण्ड का सम्राट् देखूँगी और वीरप्रसूती होकर एकबार गर्व्व से तुमसे चरण वन्दना कराऊँगी, किन्तु आह! पतिसेवा से भी वंचित हुई और पुत्र का ... "

देवदत्त—"नहीं, नहीं, राजमाता दुखी न हो। अजातशत्रु तुम्हारा अमूल्य रत्न है, रण की भयानकता देख कर दयालु वीर धनञ्जय का भी हृदय पिघल गया था।"

(सहसा विरुद्धक का प्रवेश)

विरुद्धक—"माता, वन्दना करता हूँ। भाई अजात! क्या तुम विश्वास करते हो। मैं साहसिक हो गया हूँ, किन्तु मैं भी राजपुत्र हूँ। और हमारा तुम्हारा ध्येय एकही है।"

अजात०—"तुम्हें! कभी नहीं, तुम्हारे षड़यन्त्र से समुद्रदत्त मारा गया, और ..."

विरुद्धक—"और कोशलनरेश को पाकर भी मेरे कहने से छोड़ दिया क्यों? यदि मेरी मन्त्रणा लेते तो आज तुम मगध पर और मैं कोशल में सम्राट् होकर सुख भोगता। किन्तु, उस दुष्टा मल्लिका ने तुम्हें ..."

अजात०—"हाँ उसमें तो मेरा ही दोष था। किन्तु अब तो मगध और कोशल आपस में शत्रु हैं, फिर हम तुम पर विश्वास क्यों करें।"

विरुद्धक—'केवल एक बात विश्वास करने की है। यही कि तुम कोशल नहीं चाहते और मैं काशी सहित मगध नहीं चाहता। देखो, सेनापति कारायण ही कोशल की सेना का नेता है। वह मिला हुआ है, और विशाल सम्मिलित वाहिनी क्षुब्ध समुद्र के समान गर्जन कर रही है। मैं खड्ग लेकर शपथ करता हूँ कि कौशाम्बी की सेना पर मैं आक्रमण करूंगा और दीर्घकारायण के कारण जो निर्बल कोशल सेना है उस पर तुम, जिसमें तुम्हें विश्वास बना रहे। यही समय है, विलम्ब ठीक नहीं।"

छलना—' कुमार विरुद्धक ! क्या तुम अपने पिता के विरुद्ध खड़े होंगे ? और किस विश्वास पर

विरुद्धक—"जब मैं पदच्युत और अपमानित व्यक्ति हूँ तब मुझे अधिकार है कि सैनिक कार्य में किसी का भी पक्ष ग्रहण कर सकूं, क्योंकि क्षत्रिय होने से मेरा यही धर्म्म है। हाँ पिता से मैं स्वयं नहीं लड़ूँगा। इसी लिये कौशाम्बी की सेना पर मैं आक्रमण करना चाहता हूँ।"

देवदत्त और छलना—' अब अविश्वास का समय नहीं है। रणवाद्य समीप ही सुनाई पड़ते हैं ।"

अजात०—"जैसी माता की आज्ञा।"

(छलना टीका आरती करती है)

(नेपथ्य में रणवाद्य, विरुद्धक और अजात की युद्धयात्रा)

(पदा पड़ता है)

यवनिकापतन ।

अङ्क तीसरा

दृश्य पहिला

स्थान—मगध में राजकीय भवन।

(छलना और देवदत्त)

छलना—"धूर्त! तेरी प्रवञ्चना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई, पुत्र बन्दी होकर विदेश गया और पति को मैं स्वयं बन्दी बनाये हूँ। पाखण्ड, तूने ही यह चक्र रचा है।"

देवदत्त—"अभागिनी! क्या तुझे राजशक्ति का घमंड है? जो, हम परिव्राजकों से इस तरह की बातें करती है। तेरी राज लिप्सा और महत्त्वाकांक्षा ने ही तुझ से सब कुछ कराया है। तू दूसरे पर क्यों दोषारोपण करती है, क्या तुझे राज्य भोगना है?"

छलना—"पाखण्ड! जब तू ने धर्म के नामपर उत्तेजित करके मुझे कुशिक्षा दी, तब नहीं सोचा था। गौतम को कलंकित करने के लिये कौन श्रावस्ती गया था? और किसने मतवाला हाथी दौड़ा कर उनके प्राण लेने की चेष्टा की थी? ओह! मैं किस

भ्रान्ति में थी। जी चाहता है कि इस नरपिशाच मूर्ति को अभी मिट्टी में मिला दूँ। प्रतिहारी!"

प्रतिहारी—(प्रवेश करके) "महादेवी की जय हो। क्या आज्ञा है।

छलना—"अभी इस बुढ़िये को बन्दी बनाओ और वासवी को पकड़ लाओ।"

(प्रतिहारी इङ्गित करता है, देवदत्त बन्दी होता है)

देवदत्त—"इसका फल तुझे मिलेगा।"

छलना—"घायल बाघिनी को भय दिखाता है। आषाढ़ की पहाड़ी नदी को हाथों से रोक लेना चाहता है। देवदत्त! ध्यान रखना इस अवस्था में नारी क्या नहीं कर सकती हैं। भय तेरा अभिशाप मुझे नहीं डरा सकता। तू अपने कर्म भोगने को प्रस्तुत हो जा।"

(वासवी का प्रवेश)

छलना—"अब तो तुम्हारा हृदय सन्तुष्ट हुआ।"

वासवी—"क्या कहती हो छलना? अजात बन्दी हो गया तो मुझे सुख मिला, यह बात कैसे तुम्हारे मुख से निकली? क्या वह मेरा पुत्र नहीं है?"

छलना—"मीठे मुँह की डाइन! अब तेरी बातों से मैं ठगी नहीं होने की। ओह इतनी साहस, इतनी घुटी चातुरी। आज मैं उस हृदय को निकाल लूँगी, जिसमें यह सब भरे थे। वासवी सावधान! मैं भूखी सिंहनी हो रही हूँ।"

वासवी—"छलना ! उसका मुझे डर नहीं है । यदि तुम्हें इससे कोई सुख मिले तो तुम करो । किन्तु एक बात और विचार लो, क्या कोशल के लोग जब मेरी यह अवस्था सुनेंगे तो अजात को और शीघ्र मुक्त कर देने के बदले कोई दूसरा काएड न उपस्थित करेंगे ।"

छलना—"तब क्या होगा ? ।"

वासवी—"जो होगा वह तो भविष्य के गर्भ में है, किन्तु मुझे एकबार कोशल अनिच्छा पूर्वक भी जाना ही होगा और अजात को ले आने की चेष्टा करनी ही होगी ।"

छलना—"यह और भी अच्छा बतलाया—जो हाथ का है उसे भी जाने दूँ । क्यों वासवी ! पद्मावती को पढ़ा रही हो ।"

वासवी—"बहिन छलना ! मुझे तुम्हारी बुद्धि पर खेद होता है । क्या मैं अपने प्राण को डरती हूँ, या सुख भोग के लिये जा रही हूँ ? ऐसी अवस्था में आर्यपुत्र को मैं छोड़ कर चली जाऊँगी, ऐसा भी तुम्हें अब तक विश्वास है ? मेरा उद्देश्य केवल विवाद मिटाने का है ।"

छलना—"इसका प्रमाण ?"

वासवी—"प्रमाण आर्यपुत्र हैं । छलना, चौंको मत । तुम उनकी परिणीता पत्नी हो तब भी, तुम्हारे विश्वास के लिये मैं उन्हें तुम्हारी देख रेख में छोड़े जाऊँगी । हाँ इतनी प्रार्थना है कि उन्हें कोई कष्ट न होने पाये, और क्या कहूँ, वे ही तुम्हारे भी पति हैं ।

हाँ, देवदत्त को मुक्त कर दो। चाहे इसने कितना भी हम लोगों का अनिष्ट-चिन्तन किया है, फिर भी परिव्राजक मार्जनीय है।"

छलना—(प्रहरियों से) "छोड़ दो इसको, फिर काला मुख मगध में न दिखावे।"

(प्रहरी छोड़ते हैं। देवदत्त जाता है)

वासवी—"देखो, राज्य में आतङ्क न फैलने पावे। दृढ़ होकर मगध का शासन करना। किसी को कष्ट भी न हो। और प्यारी छलना! यदि हो सके तो आर्यपुत्र की सेवा करके नारी जन्म सार्थक कर लेना।"

छलना—"वासवी! बहिन! (रोने लगती है) मेरा कुणीक मुझे दे दो मैं भीख माँगती हूँ। मैं नहीं जानती थी कि निसर्ग से इतनी करुणा और इतना स्नेह सन्तान के लिये, इस हृदय में सञ्चित था। यदि जानती होती तो इस निष्ठुरता का स्वांग न करती।"

वासवी—"रानी! यही जो जानती कि नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है तो पुरुषार्थ का ढोंग क्यों करती। रो मत! बहिन मैं जाती हूँ तू यही समझ कि कुणीक नानिहाल गया है।"

छलना—"तुम जानो।"

(पट परिवर्तन)



बाजिरा—"राजकुमार! मेरा परिचय पाने पर तुम घृणा करोगे और फिर मेरे आने पर मुह फेर लोगे। तब मैं बड़ी व्यथित हूँगी? हम लोग इसी तरह अपरिचित रहें। अभिलापायें रूप बदलें, किन्तु वे नीरव रहें। उन्हें बोलने का अधिकार न हो। बस, तुम हमें एक करुण दृष्टि से देखो और मैं कृतज्ञता के पुष्प तुम्हारे चरणों पर चढ़ाकर चली जाया करूँगी।"

अजात०—"सुन्दरी! यह अभिनय कई दिन हो चुका। अब धैर्य्य नहीं रुकता है। तुम्हें अपना परिचय देना ही होगा।"

बाजिरा—"ओह! राजकुमार! मेरा परिचय पाकर तुम सन्तुष्ट न होगे, नहीं तो मैं छिपाती क्यों?"

अजात०—"तुम चाहे प्रसेनजित की ही कन्या क्यों न हो। किन्तु मैं तुम से असन्तुष्ट न हूँगा। मेरी समस्त श्रद्धा अकारण तुम्हारे चरणों पर लोटने लगी है सुन्दरी!"

बाजिरा—"मैं वही हूँ राजकुमार! कोशल की राजकुमारी मेरा ही नाम बाजिरा है।"

अजात०—"सुनता था कि प्रेम द्रोह को पराजित करता है आज विश्वास भी हो गया। तुम्हारे उदार प्रेम ने मेरे विद्रोही हृदय को विजित कर लिया। अब यदि कोशलनरेश मुझे बन्दी गृह से छोड़ दें तब भी ।"

बाजिरा—"तब भी क्या?"

अजात०—"मैं कैसे जा सकूँगा।"

वाजिरा—(ताली निकाल कर जगला खोलती है। अजात बाहर आता है) "अब तुम आ सकते हो। पिता की सारी झिड़कियाँ मैं सुन लूँगी। उनका समस्त क्रोध मैं अपने वक्ष पर वहन करूँगी राजकुमार! अब तुम मुक्त हो, जाओ।"

अजात०—"यह तो नहीं हो सकता। इस उपकार का प्रतिफल तुम्हें अपने पिता से तिरस्कार और भर्त्सना ही मिलेगी सुन्दरी! सो, अब यह तुम्हारा चिरबन्दी मुक्त होने की चेष्टा भी न करेगा।"

वाजिरा—'प्रिय राजकुमार! तुम्हारी इच्छा, किन्तु फिर मैं अपने को रोक न सकूँगी और हृदय की दुर्बलता या प्रेम की सबलता हमें व्यथित करेगी।"

अजात०—"राजकुमारी! तो हम लोग एक दूसरे को प्रेम करने के अयोग्य हैं, ऐसा कोई मूर्ख भी नहीं कहेगा।"

वाजिरा—तब प्राणनाथ! मैं अपना सर्वस्व तुम्हें समर्पण करती हूँ।"

(अपनी माला पहनाती है)

अजात०—"मैं अपने समेत उसे तुम्हें लौटा देता हूँ प्रिये! हम तुम अभिन्न हैं। यह जगली हिरन इस स्वर्गीय गीत पर चौकड़ी भरना भूल गया है। अब यह तुम्हारे प्रेम-पाश में पूर्ण रूप से बद्ध है।"

(अँगूठी पहनाता है)

(कारायण का सहसा प्रवेश)

कारायण—"यह क्या। बन्दीगृह में प्रेमलीला। राजकुमारी। तुम कैसे यहाँ आई हो? क्या राजनियम की कठोरता भूल गई हो।"

वाजिरा—"इसका उत्तर देने के लिये मैं बाध्य नहीं हूँ।"

कारायण—"किन्तु यह कारण एक उत्तर की आशा करता है। वह मुझे नहीं, तो महाराज के समक्ष देना होगा। बन्दी, तुम ने ऐसा साहस क्यों किया?"

अजात०—"मैं तुम से बात भी नहीं किया चाहता। तुम्हारे महाराज से मेरी प्रतिद्वन्द्विता है। उनके सेवकों से नहीं।"

कारायण—"राजकुमारी। मैं कठोर कर्त्तव्य के लिये बाध्य हूँ। इस बन्दी राजकुमार को ढिठाई की शिक्षा देनी ही होगी।"

वाजिरा—"क्यों, बन्दी भाग तो गया नहीं, उसका प्रयास भी उसने नहीं किया, फिर?"

कारायण—"फिर, आह। मेरी समस्त आशाओं पर तुमने पानी फेर दिया है। और भयानक प्रतिहिंसा मेरे हृदय में जल रही है। उस युद्ध में मैंने तुम्हारे लिये ही "

वाजिरा—"सावधान। कारायण। अपनी जीभ बन्द करो।"

अजात०—"यदि तुम्हें कुछ बाहुबल का भरोसा हो तो द्वन्द्व युद्ध में तुम्हें मैं आह्वान करता हूँ।"

कारायण—"मुझे कोई चिन्ता नहीं, यदि राजकुमारी की प्रतिष्ठा पर न आँच पहुँचे। क्योंकि मेरे हृदय में अभी भी स्थान है। क्यों राजकुमारी क्या कहती हो।"

अजात०—"तब! और किसी समय! मैं अपने स्थान पर जाता हूँ। जाओ राजनन्दिनी!"

वाजिरा—"किन्तु कारायण! मैं आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ।"

कारायण—"यहाँ तक! कोई चिन्ता नहीं। इस समय तो चलिये। क्योंकि महाराज आया ही चाहते हैं।"

(अजात अपने मंगले में जाता है, एक ओर कारायण और राजकुमारी वाजिरा जाती हैं, दूसरी ओर से वासवी और प्रसेनजित का प्रवेश।)

प्रसेन०—"क्यों कुणीक, अब क्या इच्छा है?"

वासवी—"न न! भाई खोल दो! इसे मैं इस तरह देख कर बात नहीं कर सकती हूँ। मेरा बच्चा कुणीक "

प्रसेन०—"बहिन! जैसा कहो।" (खोल देता है। वासवी अङ्क में ले लेती है)

अजात०—"कौन! विमाता नहीं तुम मेरी माँ हो। माँ! इतनी ठंडी गोद तो मेरी माँ की भी नहीं है। आज मैंने जननी की शीतलता का अनुभव किया है। मैंने बड़ा अपमान किया है माँ! क्या तुम क्षमा करोगी?"

वासवी—"वत्स कुणीक! वह अपमान भी क्या अब मुझे स्मरण है। तुम्हारी माता, तुम्हारी माँ नहीं है, मैं तुम्हारी माँ हूँ। वह तो डाइन है, उसने मेरे सुकुमार बच्चे को बन्दी-गृह में भेज दिया, ऐसी उत्तेजना दी। भाई, मैं इसे इसके सिंहासन पर भेजती हूँ। तुम इसके जाने का प्रबन्ध कर दो।"

अजात०—"नहीं माँ, अब कुछ दिन उस विषैली वायु से अलग रहने दो। तुम्हारी शीतल छाया का विश्राम मुझ से अभी नहीं छोड़ा जायगा।"

(घुटने टेक देता है। वासवी अभय का हाथ रखती है)

पटपरिवर्त्तन।

दृश्य तीसरा।

स्थान—कानन का प्रान्त ।

(विरुद्धक और मल्लिका)

विरुद्धक—"मल्लिका! मैं तो आज टहलता टहलता कुटी से इतनी दूर चला आया हूँ। अब तो मैं सबल हो गया, तुम्हारी इस सेवा से मैं जीवनभर उऋण नहीं हूँगा।"

मल्लिका—"अच्छा किया विरुद्धक! तुम्हें स्वास्थ्य देख कर मैं बहुत प्रसन्न हुई। अब तुम अपनी राजधानी को लौट जा सकते हो; किन्तु मैं तुम से कुछ कहूँगी।"

विरुद्धक—"मुझे भी तुमसे बहुत कुछ कहना है। मेरे हृदय में बड़ी खलबली है। यह तो तुम्हें विदित था कि सेनापति बन्धुल को

मैंने ही मारा है। और उसी की तुमने इतनी सेवा की इससे क्या मैं समझूँ? क्या मेरी शंका निर्मूल नहीं है! कह दो मल्लिका।"

मल्लिका—"विरुद्धक! तुम उसका मनमाना अर्थ लगाने का भ्रम मत करो। तुमने समझा होगा कि मल्लिका का हृदय कुछ विचलित है। छि तुम राजकुमार हो न, इसीलिये। अच्छी बात क्या तुम्हारे मस्तिष्क में कभी आई ही नहीं। मल्लिका उस मिट्टी की नहीं है जिसकी तुम समझते हो।"

विरुद्धक—"किन्तु मल्लिका! अतीत में तुम्हारे कारण मेरा वर्तमान बिगड़ा था। पिता ने जब तुम से मेरा ब्याह करने को अस्वीकार किया उसी समय से मैं पिता के विरुद्ध हुआ और उस विरोध का यह परिणाम हुआ।"

मल्लिका—"इसके लिये मैं कृतज्ञ नहीं हो सकती। राजकुमार! मैं तुम्हारा कलङ्कमय जीवन भी बचाना अपना धर्म समझती हूँ। और यह मेरी विश्वमैत्री की परीक्षा थी। जब इसमें मैं उत्तीर्ण हो गई तब मुझे अपने पर विश्वास हुआ। विरुद्धक, तुम्हारा रक्त-कलुषित हाथ मैं छू भी नहीं सकती। तुमने कपिलवस्तु के निरीह प्राणियों को किसी की भूल पर निर्दयता से वध किया, तुमने पिता से विद्रोह किया, विश्वासघात किया, एक वीर को धोखा देकर मार डाला और अपने देश के जन्मभूमि के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण किया। तुम्हारे सा नीच और कौन होगा। किन्तु यह सब जानकर भी मैं तुम्हें रणक्षेत्र से सेवा के लिये उठा लाई।"

विरुद्धक—"तब क्यों नहीं मर जाने दिया? क्यों कलङ्की जीवन बचाया—और अब ..."

मल्लिका—"तुम इसलिये नहीं बचाये गये कि फिर भी एक विरक्त नारी पर बलात्कार और लम्पटता का अभिनय करो। जीवन इसलिये मिला है कि पिछले कुकर्मों का प्रायश्चित्त करो। अपने को सुधारो।"

(श्यामा का प्रवेश)

श्यामा—"और भी एक भयानक अभियोग है इस नर राक्षस पर! इसने एक विश्वास करने वाली स्त्री पर अत्याचार किया है, उसकी हत्या की है। क्या शैलेन्द्र?"

विरुद्धक—"अरे श्यामा!!"

श्यामा—"हाँ शैलेन्द्र, तुम्हारी नीचता का उदाहरण मैं अभी जीवित हूँ। निर्दय! चाण्डाल की तरह क्रूर कर्म तुमने किया। ओह! जिसके लिये मैंने राजरानी का सुख छोड़ दिया, अपने वैभव पर ठोकर लगाया, उसका ऐसा कर्म। प्रतिहिंसा तो नहीं पश्चात्ताप से सारा शरीर भस्म हो रहा है।"

मल्लिका—"विरुद्धक! यह क्या, जो रमणी तुम्हें प्यार करती है, जिसने सर्वस्व तुम्हारे अर्पण किया था, उसे तुम न चाह सके। तुम्हारे सा नीच भी रमणी रत्न को पाने का प्रयास करता है जिसकी छाया भी छू सकने के योग्य नहीं हो।"

विरुद्धक—"मैं इसे वेश्या समझता था।"

श्यामा—"और मैं तुम्हें डाँकू समझने पर भी चाहने लगी थी, इतना तुम्हारे ऊपर मेरा विश्वास था। तब मुझे नहीं विदित था कि तुम कोशल के राजकुमार हो।"

मल्लिका—"यदि तुम प्रेम का प्रतिदान नहीं जानते हो तो व्यर्थ एक सुकुमार नारी-हृदय को लेकर उसे पैरों से क्यों रौंदते हो। विरुद्धक! क्षमा माँगो, यदि हो सके तो इसे अपनाओ।"

श्यामा—"नहीं देवी! अब मैं आपकी सेवा करूँगी, राजसुख मैं बहुत भोग चुकी हूँ। अब मुझे राजकुमार विरुद्धक का सिंहासन भी अभीष्ट नहीं है, मैं तो शैलेन्द्र डाँकू को चाहती थी।"

विरुद्धक—"श्यामा, अब मैं सब तरह से प्रस्तुत हूँ और क्षमा भी माँगता हूँ।"

श्यामा—"अब तुम्हें, तुम्हारा हृदय अभिशाप देगा, यदि मैं क्षमा कर भी दूँ। किन्तु नहीं विरुद्धक! अभी मुझ में उतनी सहनशीलता नहीं है।"

मल्लिका—"राजकुमार जाओ! कोशल लौट जाओ और यदि तुम्हें अपने पिता के पास जाने में डर लगता हो तो मैं तुम्हारी ओर से क्षमा माँगूँगी। मुझे विश्वास है कि महाराज मेरी बात मानेंगे।"

विरुद्धक—"दयामयी! उदारता की मूर्ति! मैं किस प्रकार तुमसे क्षमा माँगू, किस तरह तुमसे तुम्हारी कृपा से अपने प्राण बचाऊँ। देवी ऐसे भी जीव इसी संसार में हैं तभी तो यह भ्रम-

पूर्ण, सार ठहरा है । (पैर पर गिरता है) देवी ! अधम का अपराध क्षमा करो ।"

मल्लिका—"उठो राजकुमार ! चलो, मैं भी श्रावस्ती चलती हूँ । महाराज प्रसेनजित से तुम्हारे अपराधों को क्षमा करा दूँगी और इस कोशल को छोड़ कर चली जाऊँगी—श्यामा, तब तक तुम इस कुटीर पर रहो, मैं आती हूँ ।"

(दोनों जाते हैं)

श्यामा—"जैसी आज्ञा । (स्वगत) जिसे काल्पनिक देवत्व कहते हैं, वही तो सम्पूर्ण मनुष्यता है । मागंधी, धिक्कार है तुझे । (गाती है)

गाना ।

स्वर्ग है नहीं दूसरा और ।
सज्जन हृदय परम करुणामय यही एक है ठौर ॥
सुधा सलिल से मानस जिसका पूरित प्रेम विभोर ।
नित्य कुसुममय कल्पद्रुम की छाया है इस ओर ॥
स्वर्ग है०—

पटपरिवर्तन ।

दृश्य चौथा,

स्थान—पथ।

(दीर्घकारायण और रानी शक्तिमती)

शक्तिमती—"वाजिरा सपत्नी-कन्या है। मेरा तो कुछ वश नहीं और तुम जानते हो कि मैं इस समय कोशल की कौड़ी से भी गई बीती हूँ। किन्तु कोशल के सेनापति कारायण का अपमान करे, ऐसा तो ......"

कारायण—"रानी! हम इधर से भी गये और उधर से भी गये। विरुद्धक को भी मुँह दिखाने लायक नहीं रहे और वाजिरा भी नहीं मिली।"

शक्तिमती—"तुम्हारी मूर्खता। जब मगध के युद्ध में मैंने तुम्हें सचेत किया था तब तुम धर्मध्वज बन गये थे। और हमारे बच्चे को धोखा दिया। अब सुनती हूँ कि वह उदयन के हाथ से घायल हुआ है। उनका पता भी नहीं है।"

कारायण—"मैं विश्वास दिलाता हूँ कि कुमार विरुद्धक अभी जीवित हैं। वह शीघ्र कोशल आवेंगे।"

शक्तिमती—"किन्तु तुम इतने डरपोक हो ... राम हो, मैं ऐसा नहीं समझती थी। जिसने ... वध किया उसी की सेवा करके अपने को ... मोद मैं यदि जानती ......"

कारायण—"तब क्या करतीं ? अपने स्वामी को मार कर राज्य पर अधिकार करके अपना गौरव, अपनी विजय घोषणा आप सुनातीं ?"

शक्तिमती—"क्या प्राणीमात्र में साम्य की घोषणा करनेवाले मनुष्य ही हैं। जब कि वे अपने समाज के आधे अङ्ग को इस तरह पददलित और पैर की धूलि समझे हुए हैं। क्या उन्हें अन्त करण नहीं है ? क्या स्त्रियाँ अपना कुछ अस्तित्व नहीं रखतीं ? क्या उनके जन्मसिद्ध कोई अधिकार नहीं हैं ? क्या स्त्रियों का सब कुछ, पुरुषों की कृपा से मिली हुई भिक्षामात्र है ? मुझे इस तरह पदच्युत करने का किसी को क्या अधिकार था ?"

कारायण—"किन्तु, जब कि उनके सगठन में उनके शारीरिक और प्राकृतिक विकास में ही एक परिवर्तन है जो स्पष्ट बतलाता है कि वे शासन कर सकती हैं किन्तु अपने हृदय पर, वे अधिकार जमा सकती हैं उन मनुष्यों पर जिसने कि समस्त विश्व पर अधिकार जमाया है। वह मनुष्य पर राजरानी के समान एकाधिपत्य रख सकती हैं तब उन्हें इस दुरभिसन्धि की क्या आवश्यकता है। जो, केवल सदाचार और शान्ति को ही नहीं शिथिल करती, किन्तु उच्छृङ्खलता को भी आश्रय देती है।"

शक्तिमती—"फिर बार बार यह अवहेलना कैसी ? यह वञ्चना कैसा ? हमारी असमर्थता सूचित कराकर हमें और भी निर्मूल आशकाओं में छोड़ देने की कुटिलता क्यों है ? क्या हम मनुष्य के समान नहीं हो सकतीं ? क्या चेष्टा करके हमारी स्वतन्त्रता नहीं

पददलित की गई है ? देखो, जब गौतम ने स्त्रियों को भी प्रव्रज्या लेने की आज्ञा दी, तब क्या वे ही सुकुमार स्त्रियाँ परिव्राजिका के कठोर व्रत को अपनी सुकुमार देहपर नहीं उठानेका प्रयास करतीं ?"

कारायण—"देवी ! किन्तु यह साम्य और परिव्राजिका होने की विधि भी तो उन्हीं मनुष्यों में से किसी ने फैलाई है। स्वार्थ-त्याग के कारण वे उसकी घोषणा करने में समर्थ हुए, किन्तु समाज भर में न तो स्वार्थी स्त्रियों की कमी है न पुरुषों की। और, सब एक हृदय के हैं भी नहीं, फिर मनुष्य समाज पर ही आक्षेप क्यों ? जितनी अन्तःकरण की वृत्तियों का विकास सदाचार का ध्यान करके होता है उन्हीं को जनता कर्तव्य का रूप देती है। मेरी प्रार्थना है कि तुम भी उन स्वार्थी मनुष्यों की कोटि में मिल कर भयंकर न बन जाओ। विश्वभर में सब कर्म सब के लिये नहीं हैं, इसमें कुछ विभाग है अवश्य। सूर्य अपना काम जलता चलता हुआ करता है और चन्द्रमा उसी आलोक को शीतलता से फैलाता है। क्या उन दोनों से बदला हो सकता है ? मनुष्य कठोर परिश्रम करके और जीवन संग्राम में प्रकृति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है। और वह स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्ति तथा सान्त्वना का अभय वरदहस्त का आश्रय, मानव समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्वशासक की एकमात्र अधिकारिणी, प्रकृति स्वरूपा स्त्रियों की सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है। उसे छोड़कर असमर्थता, दुर्बलता प्रकट करके इस दौड़-धूप में क्यों

कारायण—"तब क्या करतीं ? अपने स्वामी को मार कर राज्य पर अधिकार करके अपना गौरव, अपनी विजय घोषणा आप सुनातीं ?"

शक्तिमती—"क्या प्राणीमात्र में साम्य की घोषणा करनेवाले मनुष्य ही हैं। जब कि वे अपने समाज के आधे अङ्ग को इस तरह पददलित और पैर की धूलि समझे हुए हैं। क्या उन्हें अन्त-करण नहीं है ? क्या स्त्रियाँ अपना कुछ अस्तित्व नहीं रखतीं ? क्या उनके जन्मसिद्ध कोई अधिकार नहीं हैं ? क्या स्त्रियों का सब कुछ, पुरुषों की कृपा से मिली हुई भिक्षामात्र है ! मुझे इस तरह पदच्युत करने का किसी को क्या अधिकार था ?"

कारायण—"किन्तु, जब कि उनके सगठन में उनके शारीरिक और प्राकृतिक विकास में ही एक परिवर्तन है जो स्पष्ट बतलाता है कि वे शासन कर सकती हैं किन्तु अपने हृदय पर, वे अधिकार जमा सकती हैं उन मनुष्यों पर जिसने कि समस्त विश्व पर अधिकार जमाया है। वह मनुष्य पर राजरानी के समान एका धिपत्य रख सकती हैं तब उन्हें इस दुरभिसन्धि की क्या आव श्यकता है। जो, केवल सदाचार और शान्ति को ही नहीं शिथिल करती, किन्तु उच्छृङ्खलता को भी आश्रय देती है।"

शक्तिमती—"फिर बार बार यह अवहेलना कैसी ? यह बहाना कैसा ? हमारी असमर्थता सूचित कराकर हमें और भी निर्मूल आशंकाओं में छोड़ देने की कुटिलता क्यों है ? क्या हम मनुष्य के समान नहीं हो सकतीं ! क्या चेष्टा करके हमारी स्वतन्त्रता नहीं

पददलित की गई है ? देखो, जब गौतम ने स्त्रियों को भी प्रव्रज्या लेने की आज्ञा दी, तब क्या वे ही सुकुमार स्त्रियाँ परिव्राजिका के कठोर व्रत को अपनी सुकुमार देहपर नहीं उठानेका प्रयास करतीं?"

कारायण—"देवी ! किन्तु यह साम्य और परिव्राजिका होने की विधि भी तो उन्हीं मनुष्यों में से किसी ने फैलाई है। स्वार्थ-त्याग के कारण वे उसकी घोषणा करने में समर्थ हुए, किन्तु समाज भर में न तो स्वार्थी स्त्रियों की कमी है न पुरुषों की। और,सब एक हृदय के हैं भी नहीं, फिर मनुष्य समाज पर ही आक्षेप क्यों ? जितनी अन्तःकरण की वृत्तियों का विकास सदाचार का ध्यान करके होता है उन्हीं को जनता 'कर्तव्य का रूप देती है। मेरी प्रार्थना है कि तुम भी उन स्वार्थी मनुष्यों की कोटि में मिल कर पद दर न बन जाओ। विश्वभर में सब कर्म सब के लिये नहीं हैं, इसमें कुछ विभाग है अवश्य। सूर्य अपना काम जलता चलता हुआ करता है और चन्द्रमा उसी आलोक को शीतलता से फैलाता है। क्या उन दोनों से बदला हो सकता है ? मनुष्य कठोर परिश्रम करके और जीवन संग्राम में प्रकृति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है। और वह स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्ति तथा सान्त्वना का अभय वरदहस्त का आश्रय, मानव समाज की सारी वृत्तियों की कुञ्जी, विश्वशासक की एकमात्र अधिकारिणी, *प्रकृति स्वरूपा स्त्रियों की सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है।* उसे छोड़कर असमर्थता, दुर्बलता प्रकट करके इस दौड़ धूप में

पड़ती हो। देवी! तुम्हारे राज्य की सीमा विस्तृत है, और मनुष्य की संकीर्ण। कठोरता का उदाहरण है मनुष्य, और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री जाति। मनुष्य क्रूरता है तो स्त्री करुणा है। जो, अन्तर्जगत का उच्चतम विकास है जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं। इसीलिये प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मनमोहन आवरण दिया है, रमणी का रूप। संगठन और आधार भी वैसे ही हैं। उन्हें दुरुपयोग में न ले आओ। अहंकार की प्राशववृत्ति जिसका परिणाम कठोरता है स्त्रियों के लिये तो क्या मनुष्य के लिये भी नहीं है। यदि कोई व्यक्तिगत स्वार्थ से उसे स्वीकार करता है तो वह केवल उसका स्वतन्त्रता का बहाना मात्र है। वह अनुकरणीय नहीं है वह नियम का अपवाद है। उसे नारी जाति जिस दिन स्वीकृत कर लेगी, उस दिन समस्त सदाचारों में विप्लव होगा। फिर कैसी स्थिति होगी, यह कौन कह सकता है।"

शक्तिमती—"फिर क्या पदच्युत करके मैं अपमानित और पददलित नहीं की गई? क्या—यह ठीक था?"

कारायण—"पदच्युत होने का अनुभव करना भी एक दम्भ मात्र है। देवी! एक स्वार्थी के लिये समाज दोषी नहीं हो सकता। क्या मल्लिका देवी का उदाहरण कहीं दूर का है। वही लोलुप नर-पिशाच हमारा और आपका स्वामी, कोशल का सम्राट्! क्या २ उनके साथ कर चुका है यह आप क्या नहीं जानती हैं? फिर भी उनकी सती सुलभ वास्तविकता देखिये और अपनी कृत्रिमता की तुलना कीजिये।"

शक्तिमती—(सिर झुकाकर) "हाँ कारायण ! यहाँ तो मुझे सिर झुकाना ही पड़ेगा।"

कारायण—"देवी ! मैं एक दिन में इस कोशल को उलट पलट देता, छत्र चमर लेकर हठात् विरुद्धक को सिंहासन पर बैठा देता, किन्तु चित्त के बिगड़ने पर भी मल्लिका देवी का शासन मुझे सुमार्ग से नहीं हटा सका। हम और आप देखेंगी कि शीघ्र ही कोशल के सिंहासन पर राजकुमार विरुद्धक बैठेंगे।"

(विरुद्धक और मल्लिका का प्रवेश)

शक्तिमती—"माननीया मल्लिका को मैं अभिवादन करती हूँ।"

कारायण—"मैं नमस्कार करता हूँ।"

(विरुद्धक माता का चरण छूता है)

मल्लिका—"शान्ति मिले, चित्त शीतल हो। बहिन, क्या तुम अब भी राजकुमार को उत्तेजित करके उसे मनुष्यता की स्थिति से गिराने की चेष्टा करोगी ? तुम जननी हो तुम्हारा प्रसन्न मातृभाव क्या तुम्हें इसीलिये उत्साहित करता है ? क्या क्रूर विरुद्धक को देख कर तुम्हारी अन्तरात्मा लज्जित नहीं होती।"

शक्तिमती—"वह मेरी भूल थी देवी। क्षमा करना। वह बर्बरता का उद्रेक था—पाशव वृत्ति की उत्तेजना थी।"

मल्लिका—"चन्द्र सूर्य, शीतल उष्ण, क्रोध करुणा, द्वेषस्नेह, का द्वन्द्व संसार का मनोहर दृश्य है। रानी। स्त्री पुरुष भी उसी विलक्षण सृष्टि का अवलम्बन है। स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि पाशववृत्ति वाले क्रूरकर्मा मनुष्यों को कोमल और करुणाप्लुत करे, कठोर पौरुष

के अनन्तर उन्हें जिस शिक्षा की आवश्यकता है वह स्नेह शीतलता सहन शीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियों से ही सीखना होगा। हमारा यह कर्त्तव्य है। व्यर्थ स्वतन्त्रता और समानता का अहंकार करके उस अपने अधिकार से हमको वंचित न होना चाहिए। चलो, आज अपने स्वामी से क्षमा माँगो। आज सुना है कि अजात और वाजिरा का व्याह होने वाला है। तुम भी उस उत्सव में अपने घर को सूना मत रखो। चलो।"

शक्तिमती—"आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है देवी!"

कारायण—"तो मैं आज्ञा चाहता हूँ। क्योंकि मुझे शीघ्र पहुँचना चाहिये। देखिये, वैतालिकों की वीणा बजने लगी। सम्भवत महाराज शीघ्रही सिंहासन पर आया चाहते हैं। (राजकुमार विरुद्धक से) राजकुमार! मैं आप से क्षमा चाहता हूँ, क्योंकि आप जिस विद्रोह के लिये मुझे आज्ञा दे गये थे मैं उसे करने में असमर्थ था—अपने राष्ट्र के विरुद्ध यदि आप अस्त्र ग्रहण न करते तो सम्भवत मैं आपका अनुगामी हो जाता, क्योंकि मेरे हृदय में भी प्रतिहिंसा थी। किंतु वैसा नहीं हो सका। उसमें मेरा अपराध नहीं।"

विरुद्धक—"उदार सेनापति मैं हृदय से तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ। और स्वय तुमसे क्षमा माँगता हूँ।"

कारायण—"मैं सेवक हूँ युवराज!"

(जाता है)

(पटपरिवर्त्तन)

दृश्य पाँचवाँ

स्थान—कोशल की राजसभा ।

(वरवधू के वेष में अजातशत्रु और वाजिरा तथा प्रसेनजित
शक्तिमती—मल्लिका विरुद्धक, वासवी और
कारायण का प्रवेश)

मल्लिका—" यथार्थ है महाराज ! यह शुभ सम्बन्ध आनन्द-मय हो ।"

प्रसेन०—" देवी ! आपकी असीम अनुकम्पा है, जो मेरे से अधम व्यक्ति पर इतना स्नेह ! पतितपावनी, तुम धन्य हो ।"

मल्लिका—"किन्तु महाराज ! मेरी एक प्रार्थना है ।"

प्रसेन०—" आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है भगवती ।"

मल्लिका—" इस आपकी पत्नी परित्यक्ता शक्तिमती का क्या दोष है ? इस शुभ अवसर पर यह विवाद उठाना यद्यपि ठीक नहीं है तो भी "

प्रसेन०—" इसका प्रमाण तो यह स्वयं है । उसने क्या क्या नहीं किया—वह क्या किसी से छिपा है ?"

मल्लिका—" किन्तु इसके मूल कारण तो महाराज ही हैं । यह तो अनुकरण करती रही— यथा राजा तथा प्रजा—जन्म

लेना तो इसके अधिकार में नहीं था फिर आप इस अबला पर क्यों ऐसा कठोर विधान करते हैं ।"

प्रसेन०—" मैं इसका क्या उत्तर दूँ देवी ।"

शक्तिमती—"यह मेरा ही अपराध था आर्यपुत्र ! क्या उसके लिये क्षमा नहीं मिलेगी—मैं अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप करती हूँ । अब मेरी सेवा मुझे मिले, उससे मैं वञ्चित न होऊँ, यही मेरी प्रार्थना है ।"

प्रसेन०—(मल्लिका का मुह देखता है)

मल्लिका—" क्षमा करना ही होगा महाराज ! और उसका बोझ मेरे सिर पर होगा । मुझे विश्वास है कि यह प्रार्थना निष्फल न होगी ।"

प्रसेन०—" मैं उसे कैसे अस्वीकार कर सकता हूँ ।"

(शक्तिमती को हाथ पकड़ कर उठाता है, वह सिंहासन पर बैठती है)

मल्लिका—" मैं कृतज्ञ हुई सम्राट् ! क्षमा से बढ़कर दण्ड नहीं है, और आपकी नीति इसी का अवलम्बन करे मैं यही आशीर्वाद देती हूँ । किन्तु एक बात और भी है ?"

प्रसेन०—" वह क्या है ।"

मल्लिका—" मैं आज अपना सब बदला चुकाना चाहती हूँ, मेरा भी कुछ अभियोग है ।"

प्रसेन०—" यह बड़ा भयानक है ! देवि, उसे तो आप क्षमा कर चुकी हैं अब ।"

मल्लिका—" तब आप यह स्वीकार करते हैं कि भयानक अपराध भी क्षमा कराने का साहस मनुष्य को होता है।"

प्रसेन०—"विपन्न की यही आशा है। तब भी "

मल्लिका—" तब भी ऐसा अपराध क्षमा किया जाता है, क्यों सम्राट ?"

प्रसेन०—" मैं क्या कहूँ इसका उदाहरण तो मैं स्वयं हूँ देवि।"

मल्लिका—" तब यह राजकुमार विरुद्धक भी क्षमा का अधिकारी है।"

प्रसेन०—" किन्तु यह राष्ट्र का द्रोही है क्यों धर्माधिकारी उसका क्या दण्ड है ?"

धर्म्मा०—" मृत्युदण्ड ! महाराज।"

मल्लिका—"राजन् ! विद्रोही बनाने के कारण भी आप ही हैं। बनाने पर विरुद्धक राष्ट्र का एक सच्चा शुभचिन्तक हो सकता था। और इसमें क्या मैं तो स्वीकार करा चुकी हूँ कि भयानक अपराध भी मार्जनीय होते हैं।"

प्रसेन०—" तब विरुद्धक क्षमा किया जाय।"

विरुद्धक—" पिता, मेरा अपराध कौन क्षमा करेगा ? पितृद्रोही को कौन ठिकाना देगा ? मेरी आँखें लज्जा से ऊपर नहीं उठती हैं। मुझे राज्य नहीं चाहिए। चाहिये केवल आपकी क्षमा। पृथ्वी के साक्षात देवता ! मेरे पिता ! मुझ अपराधी पुत्र को क्षमा कीजिये।

(चरण पकड़ता है।)।

प्रसेन०—"धर्म्माधिकार! पिता का हृदय इतना सदय होता है कि नियम उसे क्रूर नहीं बना सकता—मेरा पुत्र मुझ से क्षमा-भिक्षा चाहता है। धर्मशास्त्र के उस पत्र को उलट दो। मैं एक बार अवश्य क्षमा कर दूँगा। उसे न करने से मैं पिता नहीं रह सकता, मैं जीवित नहीं रह सकता।"

धर्म्माधिकार—"किन्तु महाराज! व्यवस्था का कुछ मान रखना चाहिये।"

प्रसेन०—"यह मेरा त्याज्य पुत्र है। किन्तु अपराध का मृत्यु दण्ड, नहीं—नहीं—यह किसी राक्षस पिता का काम है। वत्स विरुद्धक उठो। मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।"

(विरुद्धक को उठाता है)

(बुद्ध का प्रवेश)

सब—"भगवान के चरणों में प्रणाम।"

गौतम—"विनय और शील की रक्षा करने में सब दत्तचित्त रहें, जिससे प्रजा का कल्याण हो—करुणा की विजय हो। आज मुझे सन्तोष हुआ कोशलनरेश! तुमने अपराधी को क्षमा करना सीख लिया, यह राष्ट्र के लिये कल्याण की बात हुई। फिर भी अभी तुम इसे त्याज्यपुत्र क्यों कह रहे हो?"

प्रसेन०—"महाराज यह दासी पुत्र है। सिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता।"

गौतम—"यह दम्भ तुम्हारा प्राचीन संस्कार है क्यों प्रसेनजित! क्या दास दासी मनुष्य नहीं हैं? क्या कई पीढ़ी ऊपर तक तुम प्रमाण दे सकते हो कि सभी राजकुमारियों की सन्तान इस सिंहासन पर बैठी हैं, या प्रतिज्ञा करोगे कि कई पीढ़ी आने वाली तक दासी-पुत्र इसपर न बैठने पावेंगे। यह छोटे बड़े का भेद क्या अभी इस संकीर्ण हृदय में इस तरह घुसा है कि नहीं निकल सकता? क्या जीवन की वर्तमान स्थिति देख कर प्राचीन अन्ध विश्वासों को, जो न जाने किस कारण होती आई है तुम बदलने के लिये प्रस्तुत नहीं हो? क्या इस क्षणिक भव में तुम अपनी स्वतन्त्र सत्ता अनन्तकाल तक बनाये रखोगे? और भी क्या उस आर्यपद्धति को तुम भूल गये कि पिता से पुत्र की गणना होती है। राजन् सावधान हो, इस अपने सुयोग्य शक्ति को स्वयं कुण्ठित न बनाओ। यद्यपि इसने कपिलवस्तु में निरीह प्राणियों का वध करके बड़ा अत्याचार किया है और कारणवश क्रूरता भी यह खूब करने लगा था, किन्तु अब इसका हृदय देवी मल्लिका की कृपा से शुद्ध हो गया है। इसे तुम युवराज बनाओ।"

सब—"धन्य है! धन्य है!!"

प्रसेन०—"आप जैसी आज्ञा—इस व्यवस्था का कौन अतिक्रम कर सकता है, और यह मेरी प्रसन्नता का कारण भी है। प्रभु, आपकी दया से मैं आज सर्व सम्पन्न हुआ। और क्या आज्ञा है।"

गौतम—"कुछ नहीं। तुम लोग कर्त्तव्य के लिये सत्ता के अधिकारी बनाये गये हो, उसका दुरुपयोग न करो। भूमण्डल पर स्नेह का, करुणा का क्षमा का शासन फैलाओ। प्राणीमात्र में सहानुभूति को विस्तृत करो। इन क्षुद्र विप्लवों से चौंक कर अपने कर्म्म पथ से च्युत न हो जाओ।"

प्रसेन०—"जैसी आज्ञा। वही होगा।"

(अजातशत्रु उठ कर विरुद्धक को गले लगाते हैं)

अजात०—"भाई विरुद्धक, मैं तुमसे ईर्षा कर रहा हूँ।"

विरुद्धक—"और मैं वह दिन शीघ्र देखूंगा कि तुम भी इसी प्रकार अपने पिता से क्षमा किये गये।"

अजात—"तुम्हारी वाणी सत्य हो।"

वाजिरा—"भाई विरुद्धक! मुझे क्या तुम भूल गये? क्या मेरा कोई अपराध है जो मुझ से नहीं बोलते थे।"

विरुद्धक—"नहीं बहिन! मैं तुमसे लज्जित हूँ। मैं तुम्हें सदैव द्वेष की दृष्टि से देखा करता था, उसके लिये तुम मुझे क्षमा करो।"

वाजिरा—"नहीं भाई! यही तो तुम्हारा अत्याचार है।"

(सब जाते हैं)

वासवी—(स्वगत)"अहा! जो हृदय विकसित होने के लिये है, जो मुख मुस्क्या कर स्नेह सहित बात करने को है, उसको लोग कैसा बिगाड़ते हैं। भाई प्रसेन, तुम अपने जीवन भर में इतने प्रसन्न कभी न हुए होंगे, जितने आज। कुटुम्ब के प्राणियों में स्नेह का

प्रचार कर के मानव इतना सुखी होता है, यह आज ही मालूम हुआ होगा। भगवान, क्या कभी वह भी दिन आवेगा, जब विश्व भर में एक कुटुम्ब स्थापित हो जायगा—मानव मात्र स्नेह से अपनी गृहस्थी सँभालेंगे।"

(जाती है)

(पटपरिवर्तन)

दृश्य छटवाँ

स्थान—पथ।

(वार्तालाप करते हुए दो नागरिक)

पहिला—" किसी ने शक्ति का ऐसा भी परिचय दिया है ? यह सहनशीलता का प्रत्यक्ष प्रमाण—ओह !"

दूसरा—" देवदत्त का शोचनीय परिणाम देखकर मुझे तो आश्चर्य हो गया। जो एक स्वतन्त्र संघ स्थापित करना चाहते थे उनकी यह दशा "

पहिला—" जब भगवान से भिक्षुओं ने कहा—कि देवदत्त आपका प्राण लेने आ रहा है उसे रोकना चाहिये "

दूसरा—" तब तब ?"

पहिला—" तब उन्होंने केवल यही कहा कि घबड़ाओ नहीं, देवदत्त मेरा कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। वह स्वयं मेरे पास नहीं आ सकता। उसमें इतनी शक्ति नहीं। क्योंकि उसमें द्वेष है।"

दूसरा—" फिर क्या हुआ ? "

पहिला—' यही कि देवदत्त समीप आने पर प्यास के कारण उस सरोवर में जल पीने उतरा। कहा नहीं जा सकता कि उसे क्या हुआ—कोई ग्राह पकड़ ले गया कि उसने लज्जा से डूब कर आत्म-हत्या कर ली। वह फिर ऊपर न दिखाई पड़ा। "

दूसरा—" आश्चर्य! गौतम की अमोघ शक्ति है। भाई, इतना त्याग तो आज तक देखा नहीं गया। केवल परदुःख-कातरता ने किस प्राणी से राज्य छुड़ाया है। अहा—वह शान्त मुखमण्डल, स्निग्ध गम्भीर दृष्टि किसको नहीं आकर्षित करती। कैसा विलक्षण प्रभाव है।"

पहिला—"जभी तो बड़े बड़े सम्राट् लोग भी नत होकर उन-की आज्ञा पालन करते हैं। देखो यह भी कभी हो सकता था कि राजकुमार विरुद्धक पुनः युवराज बनाये जाते। भगवान् ने समझा कर महाराज को ठीक कर ही दिया—और वे आनन्द से युवराज बना दिये गये।"

दूसरा—" हाँजी चलो, आज तो श्रावस्ती भर में महोत्सव है। हम लोग भी घूम घूम कर आनन्द लें।"

पहिला—"श्रावस्ती पर से आतङ्क का मेघ टला, आनन्द ही आनन्द है। इधर राजकुमारी का

से हो गया। अब युद्ध विग्रह तो कुछ दिनों के लिये शान्त हुए। चलो हम लोग भी महोत्सव में सम्मिलित हों। "

(एक ओर से दोनों जाते हैं दूसरी ओर से वसन्तक का प्रवेश)

वसन्तक—" फटी हुई बाँसुली भी कहीं बजती है। एक कहावत है कि "रहे मोची के मोची "। यह सब ग्रहों की गड़बड़ी है। ये एकबार ही इतना बड़ा काण्ड उपस्थित कर देते हैं। कहाँ साधारण मान्यमाला—हो गई थी राजरानी। मैं देख आया। वही मागधी ही तो है। अब आम की थारी लेकर बेचा करती है और लड़कों के ढेले खाया करती है। ब्रह्मा भी कभी भोजन करने के पहिले मेरी ही तरह भाँग पी लेते होंगे तभी तो ऐसा उलटफेर में, किन्तु परन्तु तथापि वही कहावत 'पुनर्मूषिका भव' एक चूहे को किसी ऋषी ने दया करके शेर बनाया वह उन्हीं पर गुर्राने लगा। जब झपटने लगा तो चट से बाबाजी बोले 'पुनर्मूषिको भव' जा बचा फिर चूहा बन जा। और वह रह गये मोची के मोची। महादेवी वासवदत्ता को यह समाचार चल कर सुनाऊँगा। हमने तो उसे पहिचान लिया, है अवश्य वही। अरे उसी के फेर में मुझे देर हो गई। महाराज ने वैवाहिक उपहार भेजे थे सो अब तो पीछे पड़ गये। लड्डू मिलेंगे। अजी बासी होगा तो क्या—मिलेंगे तो—चलूँ। किन्तु, नगर में तो आलोकमाला दिखाई देती है। सम्भवतः वैवाहिक महोत्सव का अभी अन्त नहीं हुआ, तो चलें। (जाता है)

(पटपरिवर्तन)

दृश्य सातवाँ

स्थान—आम्रकानन।

(आम्रपाली मागन्धी)

मागंधी—(आपही आप) "वाह री नियति! कैसे कैसे दृश्य देखने में आये, कभी बैलों को चारा देते देते हाथ नहीं थकते थे। कभी अपने हाथ से जल का पात्र तक उठाकर पीने से सकोच होता था। कभी शील का बोझ एक पैर भी महल के बाहर चलने में रोकता था और कभी निर्लज्जा गणिका का आमोद मनोनीत हुआ। इस बुद्धिमत्ता का कहाँ ठिकाना है। वास्तविक रूप के परिवर्तन की इच्छा मुझे इतनी विषमता में ले आई। अपनी परिस्थिति को सयम में न रखकर व्यर्थ महत्त्व का ढोंग मेरे हृदय ने किया, काल्पनिक सुख लिप्सा ही में पड़ी—उसी का यह परिणाम है। खो सुलभ एक स्निग्धता, सरलता की मात्रा कम होजाने से जीवन में कैसे बनावटी भाव आगये। जो अब केवल एक सकोच-दायिनी स्मृति के रूप में अवशिष्ट रह गये।

(गान)

न काई अपना सजन दिखाता, न मित्र अपना दिखाय कोई।
न तो लिये आँख पर है कोई, अकली इस दुख में हाय रोई॥
पलट गये दिन वे प्रेम वाले, नशा भी अब हा! रही न गर्मी।
न सेज उजली, न नींद सुख की, अकेली चादर बिछाय सोई॥

बनी न कुछ इस चपल चित्त की, बिखर गया गर्व्व झूठ जो था।
असीम चिन्ता चिता रही है, कटीली झाड़ी लगाय, रोई॥
क्षणिक वदना अनन्त सुखबस, समझ लिया शून्य में बसरा।
न अपना कोई पराया कोई, न आया काइ न जाय कोई॥

(घुटने टेक कर हाथ जोड़ती है। बुद्ध का प्रवेश)
(सिर पर हाथ रखते हैं)

गौतम—"करुणे! तेरी जय हो।"

मागधी—(आँख खोल कर, और पैर पकड़ कर) "प्रभु आगये। इस प्यासे हृदय की तृष्णा मिटाने को अमृत स्रोत ने अपनी गति परिवर्तन किया! इस मरु देश में पदार्पण किया।"

गौतम—"मागधी! तुम्हें शान्ति मिलेगी। जब तक तुम्हारा हृदय उस विशृङ्खला में था, तभी तक यह विडम्बना थी।"

मागन्धी—"प्रभु! मैं अभागिनी नारी! केवल उस अवज्ञा की चोट से बहुत दिन भटकती रही। मुझे रूप का गर्व्व बहुत ऊँचे चढ़ा ले गया था, और उसने ही नीचे पटका।"

गौतम—"क्षणिक विश्व का यह कौतुक है देवी! अब तुम अग्नि से तपे हुए हेम की तरह शुद्ध हो गई हो। विश्व के कल्याण में अग्रसर हो। असंख्य दुःखी जीवों को हमारी सेवा की आवश्यकता है, इस दुःख समुद्र में कूद पड़ो। यदि एक भी रोते हुए हृदय को तुम ने हँसा दिया तो सहस्रों स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विकसित होंगे। फिर तुमको पर-दुःख-कातरता में ही आनन्द मिलेगा। विश्व मैत्री हो जायगी—विश्व भर अपना कुटुम्ब दिखाई पड़ेगा। उठो, असंख्य आहें तुम्हारे उद्योग से अट्टहास में परिणत हो सकती हैं।"

मागन्धी—'अन्त म हमारी विजय हुई नाथ। हमने अपने जीवन के प्रथम वेग में ही आपको पाने का प्रयास किया था। किन्तु वह समय नहीं था, वह ठीक नहीं था। आज मैं अपने स्वामी को अपने नाथ को, अपना-कर धन्य हो रही हूँ।"

गौतम—"मागन्धी। अब उन अतीत के विकारों को क्यों स्मरण करती है। निर्म्मल हो जा।"

मागन्धी—"प्रभु, मैं नारी हूँ जीवन भर असफल होती आई हूँ। मुझे उस विचार के सुख से न वञ्चित कीजिये। नाथ। जन्म भर के पराजय में भी आज मेरी विजय हुई। पतितपावन। यह उद्धार आपके लिये भी महत्त्व देने वाला है और मुझे तो सब कुछ।"

गौतम—" अच्छा आम्रपाली। मुझे भूख लगी है। कुछ खिलाओ।"

मागन्धी—(आम की टोकनी लाकर रखती हुई) "प्रभु। अब इस आम्र-कानन की मुझे आवश्यकता नहीं, यह संघ को समर्पित है।" (संघ का प्रवेश)

संघ—"जय हो अमिताभ की जय हो। बुद्ध शरणं"

मागन्धी—"गच्छामि।"

गौतम—"संघं शरणं गच्छामि।"

सब मिल कर—"धर्मं शरणं गच्छामि।"

(पटपरिवर्तन)

दृश्य आठवाँ

स्थान—प्रकोष्ठ ।

[पद्मावती और छलना ।]

छलना—"बेटी ! तुम बड़ी हो, मैं बुद्धि में तुम से छोटी हूँ । मैंने तुम्हारा अनादर करके तुम्हें भी दुख दिया और भ्रान्त पथ पर चल कर स्वयं भी दुखी हुई ।"

पद्मा०—"माँ मुझे लज्जित न करो । तुम, क्या मेरी नहीं हो ! माँ, भाभी को बच्चा हुआ है । अहा कैसा सुन्दर नन्हा सा बच्चा है ।"

छलना—"पद्मा ! तुम और अजात सहोदर भाई और बहिन हो, मैं तो सचमुच एक बवंडर हूँ । बहिन वासवी ! क्या मेरा अपराध क्षमा कर दोगी ?" (वासवी का प्रवेश)

छलना—(पैर पर गिर कर) "कुणीक की तुम्हीं वास्तव में जननी हो । मुझे तो बोझ ढोना था ।"

पद्मा०—"माँ ! छोटी माँ कह रही हैं कि क्या मेरा अपराध क्षम्य है ?"

वासवी—(मुसक्या कर) "कभी नहीं, इसने कुणीक को उत्पन्न करके मुझे बड़ा सुख दिया, जिसका इस छोटे से हृदय से मैं उपभोग नहीं कर सकती । इस लिये, मैं इसे क्षमा नहीं करूँगी ।"

छलना—(हँसकर) "तब तो बहिन मैं भी तुम से लड़ाई करूँगी । क्योंकि मेरा दुःख हरण करके तुम ने मुझे स्रोखली कर

दिया है। हृदय हलका होकर बेकाम हो गया है। अरे सपत्नी का काम तो तुम्हीं ने कर दिखाया। पति को तो वश में किया ही था, मेरे पुत्र को भी अपनी गोद में ले लिया। मैं "

वासवी–"छलना! तू नहीं जानती मुझे एक बच्चे की आवश्यकता थी, इसलिये तुम्हें नौकर रख लिया था–अब तो काम नहीं है।"

छलना—"बहिन इतनी कठोर न हो जाओ।"

वासवी—(हँसती हुई) "अच्छा जाओ, मैंने तुम्हें अपने बच्चे की धात्री बना दिया। देखो, अबकी अपना काम ठीक से करना, नहीं तो फिर "

छलना—(हाथ जोड़ कर) "अच्छा स्वामिनी!"

पद्मा०—' क्यों माँ! अजात तो यहाँ अभी नहीं आया। वह क्या छोटी माँ के पास नहीं आवेगा।"

वासवी—"पद्मा! जब उसे बच्चा हुआ है तब उससे कैसे रहा जाता। वह सीधा श्रावस्ती से महाराज के मन्दिर में गया है। पुत्र उत्पन्न होने पर अब उसे पिता के स्नेह का मोल समझ पड़ा।"

छलना—"बेटी! पद्मा! चल। इसी से कहते हैं कि काठ की सौत भी बुरी होती है। देखा न निर्दयता। अजात को यहाँ न आने दिया।"

वासवी—"चल! चल! तुझे तेरा पति भी दिला दूँ और बच्चा भी—यहाँ बैठकर मुझ से लड़ मत! कंगालिनी! बच्चा ही नहीं है।" (छल हँसती हुई जाती है)

पटपरिवर्तन।

दृश्य नवम,

स्थान—महाराज बिम्बसार का कुटीर।

(म० बिम्बसार बैठे हुए।)

(नेपथ्य से गान)

स्रोत का उद्गम था अवरुद्ध,
जलद-जल रुका पवन था स्तब्ध
मिले जीवन कैसे ? हा प्यास।
सेज में थके-बैठकर-होकर परम उदास॥

विश्व में मेरा है, तो कौन ?
प्रश्न होता रहता था मौन,
परीक्षा में होगा उपहास।
इसी से सब पर था विश्वास॥

बिम्बसार—(उठ कर आपही आप) "सन्ध्या का समीर ऐसा चल रहा है जैसे दिन भर का तपा हुआ उद्विग्न संसार एक शीतल निश्वास छोड़ कर अपना प्राण धारण कर रहा है। प्रकृति की शान्तिमयीमूर्ति निश्चल होकर भी उस मधुर झोंके से हिल जाती है। मनुष्य-हृदय भी एक रहस्य है, एक पहेली है। जिसपर क्रोध से भैरव हुङ्कार करता है उसी पर स्नेह का अभिषेक करने के-



लिये प्रस्तुत रहता है। उन्माद! और क्या? मनुष्य क्या इस पागल विश्व के शासन से अलग होकर कभी निश्चेष्टता नहीं ग्रहण कर सकता? जीवन की शालीनता नहीं धारण कर सकता? हाय रे मानव, क्यों इतनी दुरभिलाषायें बिजली की तरह तू अपने हृदय में आलोकित करता है, क्या निर्मल ज्योति तारागण की मधुर किरणों के सदृश सद्वृत्तियों का विकास तुझे नहीं रुचता। भयानक भावुकता, उद्वेगजनक अन्तःकरण लेकर क्यों तू व्यग्र हो रहा है। किसे अपनी इस अनुत्तरदायित्व की बोझ से दबावेगा। जीवन की शान्तिमय सची परिस्थिति को छोड़कर व्यर्थ के अभिमान में तू कब तक पड़ा रहेगा। यदि मैं सम्राट् न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलयों के झुरमुट में एक अधखिला फूल होता और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती—पवन के किसी लहर को सुरभित करके धीरे से उस थाले में चू पड़ता—तो इतना भीषण चीत्कार इस विश्व में न मचता। वह अस्तित्व अनस्तित्व के साथ मिलकर कितना सुखी होता। भगवान्, अनन्त ठोकर खाकर लुढ़कते हुए जड़ महपिण्डों से भी तो इस चेतन मानव की बुरी गत है। धक्के पर धक्के खाकर इस निर्लज्ज सभा से यह नहीं निकलना चाहता। कैसी विचित्रता है। अहा! वासवी भी नहीं है। कब तक आवेगी।"

जीवक—(प्रवेश करके) "सम्राट्!"

बिम्बसार—"चुप! यदि मेरा नाम न जानते हो तो मनुष्य कह कर पुकारो। यह भयानक सम्बोधन मुझे न चाहिए।"

जीवक—"कई रथ द्वार पर आये हैं, और राजकुमार कुणीक भी आ रहे हैं।"

बिम्बसार—"कुणीक कौन ? मेरा पुत्र, या मगध का सम्राट् अजातशत्रु ?"

अजात०—(प्रवेश करके) "पिता ! आपका पुत्र, यह कुणीक सेवा में प्रस्तुत है।" (पैर पकड़ता है)

बिम्बसार—"नहीं नहीं, मगधराज अजातशत्रु को सिंहासन की मर्य्यादा नहीं भंग करनी चाहिए। मेरे दुर्बल चरण—आह छोड़ दो।"

अजात०—"नहीं पिता। पुत्र का यही सिंहासन है। आपने झूठा सोने का सिंहासन देकर मुझे इस सर्व अधिकार से वञ्चित किया। अवाध्य पुत्र को भी कौन क्षमा करता है ?"

बिम्बसार—"पिता। किन्तु, वह पुत्र को क्षमा करता है। सम्राट् को क्षमा करने का अधिकार पिता को कहाँ।"

अजात०—"नहीं पिता, मुझे भ्रम हो गया था। मुझे अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी। मिली थी केवल जङ्गलीपन की स्वतन्त्रता का अभिमान। अपने को विश्व भर से स्वतन्त्र जीव समझने का झूठा आत्म सम्मान।"

बिम्बसार—"वह भी तो तुम्हारे गुरुजन की ही दी हुई शिक्षा थी। तुम्हारी माँ श्री-राजमाता।"

अजात०—"वह केवल मेरी माँ थी—एक सम्पूर्ण अङ्ग का

आधा भाग उसमें पिता की छाया नहीं थी—पिता ! इसलिये आधी शिक्षा अपूर्ण ही होगी।"

छलना—(प्रवेश करके चरण पकड़ती है) "नाथ ! मुझे निश्चय हुआ कि वह मेरी उद्दण्डता थी। वह मेरी कूट चातुरी थी, दम्भ का प्रकोप था। नारी जीवन के स्वर्ग से मैं वञ्चित कर दी गई। ईंट पत्थरों के महल रूपी बन्दीगृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी। दण्डनायक ! मेरे शासक ! क्यों न उसी समय शील और विनय के नियम भङ्ग करने के अपराध में मुझे आपने दण्ड दिया। क्षमा करके सहन करके जो आपने इस परिणाम की यन्त्रणा के गर्त में मुझे डाल दिया है, वह मैं भोग चुकी। अब उबारिये।"

बिम्बसार—"छलना ! दण्ड देना मेरी सामर्थ्य के बाहर था। अब देखूँ कि क्षमा करना भी मेरे सामर्थ्य में है कि नहीं ?"

वासवी—(प्रवेश करके)"नाथ ! अब मैं ने इसको दण्ड दे दिया है, यह मातृत्व पद से च्युत की गई है अब इसको आपके पौत्र की धात्री का पद मिला है। एक राजमाता को इतना बड़ा दण्ड कम नहीं है। अब आप को क्षमा करनाही होगा।"

बिम्बसार—"वासवी ! तुम मानवी हो कि देवी ?"

वासवी—"बता हूँ ! मैं मगध के सम्राट् की राजमहिषी हूँ। और, यह छलना मगध के राजपौत्र की धाई, है और यह कुणीक मेरा बचा इस मगध का युवराज है और आपको भी ' '"

बिम्बसार—"मैं अच्छी तरह अपने को जानता हूँ, वासवी !"

वासवी—"क्या।"

बिम्बसार—"कि मैं मनुष्य हूँ और इन मायाविनी स्त्रियों के हाथ का खिलौना हूँ।"

वासवी—"तब तो महाराज आपको मैं जैसा कहती हूँ वैसा ही कीजिये। क्योंकि नहीं तो आप को लेकर मैं नहीं खेलूगी।"

बिम्बसार—"तब तो तुम्हारी विजय हुई वासवी! क्या अजात! पुत्र होनेपर पिता के स्नेह का गौरव तुम्हें विदित हुआ—कैसी उल्टी बात हुई।"

कुणीक—(लज्जित होकर सिर झुका लेता है।)

पद्मा०—(प्रवेश कर के) पिताजी, मुझे बहुत दिनों से आपने कुछ नहीं दिया है, पौत्र होने के उपलक्ष में तो मुझे कुछ अभी दीजिये, नहीं तो मैं उपद्रव मचाकर इस कुटी को खोद डालूँगी।"

बिम्बसार—'बेटा पद्मा! अहा तू भी आगई।"

पद्मा०—"हाँ पिताजी—बहू भी आई है। क्या मैंहीं ले आऊँ?"

वासवी—"चल पगली! मेरी सोने सी बहू! इस तरह क्या जहाँ तहाँ जायगी—जिसको देखना हो वहीं चलो!"

बिम्बसार—"तुम सब ने तो आकर मुझे आश्चर्य में डाल दिया। प्रसन्नता से मेरा जी घबरा उठा है।

पद्मा—"तो फिर मुझे पुरस्कार दीजिये।"

बिम्बसार—"क्या लेगी पगली?"

पद्मा०—पहले छोटी माँ को मइया को क्षमा कर दीजिये। क्योंकि इनकी याचना पहिले की है। फिर"

बिम्बसार—"अच्छा रे पद्मा! देखूँगा तेरी दुष्टता। उठो वत्स अजात! जो पिता है वह क्या कभी भी पुत्र को क्षमा! केवल क्षमा!! माँगने पर नहीं देगा। तुम्हारे लिये यह कोश सदैव खुला है। उठो छलना तुम्हें भी।

(अजातशत्रु को गले लगाता है।)

पद्मा०—"अब मेरी बारी।"

बिम्बसार—"हाँ कह भी"

पद्मा०—" बस चलकर मगध के नवीन राजकुमार को स्नेह चुम्बन आशीर्वाद के साथ दीजिये।"

बिम्बसार—"तो फिर शीघ्र चलो (उठकर गिर पड़ता है) ओह! इतना सुख एक साथ मैं सहन नहीं कर सकूँगा। तुम सब बहुत देर को आये।" (काँपता है)

[गौतम का प्रवेश। अभय हाथ उठाते हैं।]

(आलोक के साथ यवनिकापतन)



शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१	हिंस्र	(हाँ) हिंस्र
४	१	मृत्तिका है से	मृत्तिका से है
२०	११	महत्वाकक्षा	महत्वाकांक्षा
२१	१८	कोशल तो सुदत्त	सुदत्त थो कोशल
२८	१९	निर्मोही नहीं,	निर्मोही, नहीं
६८	१३	वैसे	वैसे
५७	१५	यहाँ	यही
६६	२१	तुम्हे	उन्हें
१०१	२	होंगे	होगे
१११	१	तम !	तम

इनके अतिरिक्त मात्राओं की भी कुछ भूलें रह गई हैं पाठकों से क्षमा की प्रार्थना है।

प्रकाशक ।

'प्रसादजी' की अन्य रचनायें।

'अजातशत्रु' के रचयिता इन 'प्रसाद' जी की लिखी निम्न लिखित १२ पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं।

१—काननकुसुम [१११ कविताओं का संग्रह] ॥।)
२—प्रेमपथिक [भावपूर्ण भिन्नतुकान्त, काव्य] ।)
३—महाराणा का महत्त्व " ≡)
४—सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य्य [ऐतिहासिक] ॥≈)
५—छाया [चित्ताकर्षक ११ गल्पों का गुच्छा] ॥।)
६—उर्वशी [चम्पू] ।)
७—राज्य श्री [नाटिका] ।–)
८—करुणालय [गीति नाटक] ≡)
९—प्रायश्चित्त [नाटक] ≈)
१०—कल्याणी परिणय [रूपक] ।)
११—विशाख [ऐतिहासिक नाटक] ॥।)
१२—झरना [काव्य माला] ।≈)

ये सभी मौलिक हैं। भाव-भाषा भी इनके सभी स्वतंत्र हैं। सरस्वती, प्रभा मर्यादा, हिन्दी चित्रमयजगत, नागरीप्रचारक, मनोरञ्जन, हिन्दी बङ्गवासी, माधुरी, शिक्षा प्रभृति पत्रों के अतिरिक्त हिन्दी के ख्यातनामा प० पद्मसिंहजी शर्मा, प० लोचन-प्रसादजी पाण्डेय, प० नर्मदाप्रसाद मिश्र बी.,ए, प्रभृति सज्जनों ने भी इनकी रचना की खूब सराहना की है।

इन सब की प्रथम सस्करण की समस्त प्रतियाँ चुक गई हैं। सबका द्वितीय संस्करण छप रहा है। केवल 'विशाख' और 'प्रेमपथिक' की कुछ प्रतियाँ बच गई हैं। जो अभी मिल सकती हैं।

पता—व्यवस्थापक 'हिन्दी-ग्रन्थ-भण्डार' कार्यालय,

नई सड़क, बनारस सिटी।